ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
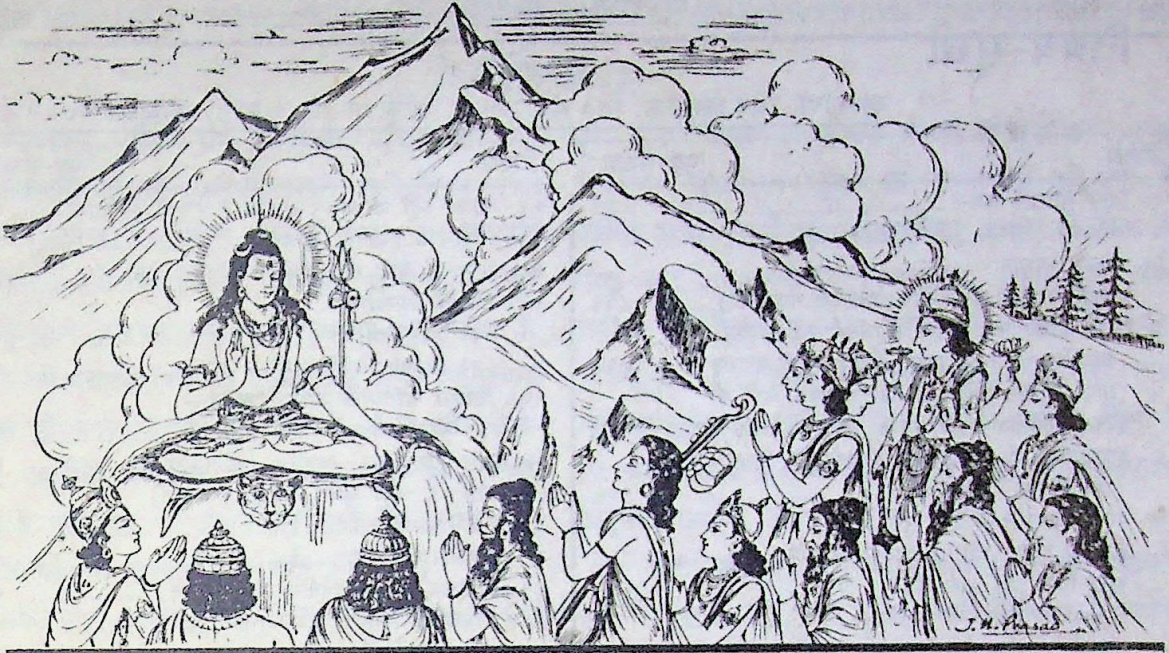
# कल्याण

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥


वर्ष ७६ | गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अक्टूबर २००२ ई० | संख्या १०

पूर्ण संख्या ९११


## दिव्य युगलसे प्रार्थना

श्रीराधा-माधव जुगल दिब्य रूप-गुन खान।
अबिरत मैं करतौ रहूँ प्रेम-मगन गुन-गान॥
'राधा-गोबिंद' नाम कौ करूँ नित्य उच्चार।
ऊँचे सुर तें मधुर मृदु, बहै दृगन रस-धार॥
करि करुना या अधम पै, करौ मोय स्वीकार।
पर्‌यौ रहूँ नित चरन-तल, करतौ जै-जैकार॥
मैं नहिं देखूँ और कौं, मोय न देखै और।
मैं नित देख्यौई करूँ, तुम दोउनि सब ठौर॥

—'भाईजी'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,५०,०००)

# विषय-सूची

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०५९, श्रीकृष्ण-सं० ५२२८, अक्टूबर २००२ ई०



## चित्र-सूची




वार्षिक शुल्क
भारतमें १२० रु०
सजिल्द १३५ रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)


जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥


दसवर्षीय शुल्क
भारतमें १२०० रु०
सजिल्द १३५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$250 (Air Mail)
US$130 (Sea Mail)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित


visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

# कल्याण

सावधान! कहीं धर्म, सदाचार, ईश्वरभक्ति और ज्ञान-वैराग्यके प्रचारके नामपर अपने व्यक्तित्वका प्रचार मत करने लगना। ऐसा होना बहुत ही सहज है। आरम्भमें शुद्ध भावनाके कारण प्रचारके विषयकी ही प्रधानता रहती है परंतु आगे चलकर ज्यों-ज्यों प्रचारका क्षेत्र बढ़ता है, त्यों-ही-त्यों प्रचारके विषयकी गौणता और अपने व्यक्तित्वकी मुख्यता हो जाया करती है। भगवान्, धर्म और ज्ञान-वैराग्य आदिके स्थानपर प्रचारककी पूजा-प्रतिष्ठा होने लगती है और वह भी इसीमें रम जाता है। इसीसे नये-नये दलोंकी या सम्प्रदायोंकी सृष्टि होती है।

*याद रखो*—अवश्य ही जिस पुरुषके द्वारा लोगोंको लाभ होता है अथवा किसी हेतुसे भी लाभ होनेकी आशा या सम्भावना होती है, उसके व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा होती है और उसका प्रचार भी होता है। तथापि उसको तो सावधान रहना ही चाहिये। नहीं तो परिणाम यह होगा कि जिस विषयका प्रचार करनेके लिये उसने कार्यक्षेत्रमें पैर रखा था, उस विषयके प्रचारमें वह स्वयं ही बाधक हो जायगा और अपने व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाके लिये लोकरञ्जनका अभिलाषी होकर अपने मूल उद्देश्यसे गिर जायगा।

*याद रखो*—शुद्ध भाव दीखनेपर भी, प्रचारक अपने मनमें मोहवश लोकरञ्जनकी आवश्यकताका अनुभव किया करता है। वह सोचता है कि भगवद्भक्ति आदिका प्रचार तभी होगा जब लोग मेरी ओर आकर्षित होकर मेरी बात सुनेंगे और लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये मुझे अपने रहन-सहनमें, कहनी-करनीमें, बोल-चालमें, व्यवहारमें, भाषामें, स्वरमें और भावभङ्गिमा आदिमें कुछ विशेषता लानी चाहिये। इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवद्भक्तोंके बाहर-भीतरके सभी आचरणोंमें साधारण लोगोंकी अपेक्षा ऐसी कुछ विलक्षणता अवश्य होनी चाहिये, जिससे उनके आदर्शके अनुसार अन्यान्य लोग अपना चरित्र-निर्माण कर सकें और भगवद्भक्तिका यथार्थ प्रचार हो। बुरे आचरणवाला भक्त, लोगोंके सामने बुरा आदर्श रखनेवाला होनेके कारण भगवद्भक्तिका प्रचार नहीं कर सकता। वस्तुतः वह भगवद्भक्त ही नहीं है; क्योंकि सच्चे भक्तमें बुरे आचरणोंका अभाव ही होता है। परंतु शुद्ध आचरणोंकी विलक्षणता स्वाभाविक होनी चाहिये, लोगोंको दिखानेके लिये नहीं। जहाँ दिखानेकी भावना है (वह एक प्रकारका दम्भ है), वहीं मनमें मोहवश गुप्तरूपसे व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठाका मनोरथ छिपा है जो भगवद्भक्तिके प्रचारके लिये लोकरञ्जनकी आवश्यकताका अनुभव करानेमें प्रधान हेतु होता है।

*याद रखो*—लोकरञ्जनकी इच्छावाला मनुष्य शुद्धाचारी ही हो, ऐसी बात नहीं है। उसको तो अपने बाहरी दिखावेपर अधिक ध्यान रखना पड़ता है, इसीसे वह सुन्दर स्वरमें गाना, मधुर भाषामें व्याख्यान देना, नाचना, लोगोंको हँसाने-रुलानेके उद्देश्यसे विभिन्न प्रकारके स्वरोंमें बोलना, भाव बताना, मुखाकृति बनाना, ध्यानस्थकी भाँति बैठना आदि न मालूम कितनी बातें करता है। उसका ध्यान रहता है कि मेरे गायन, भाषण, व्याख्यान, सत्सङ्गसे और मेरी ध्यानस्थ मूर्तिसे लोगोंका मेरी ओर खिंचाव हुआ या नहीं। गान, नृत्य, भावप्रदर्शन आदि चीजें कलाकी दृष्टिसे बहुत उपादेय हैं और किसी सीमातक प्रचारकी दृष्टिसे भी इनकी उपयोगिता है, परंतु जहाँ और जितने अंशमें इनका उपयोग केवल लोकरञ्जनके लिये होता है, वहाँ उतने अंशमें इस लोकरञ्जनके पीछे, किसी भी हेतुसे हो, अपने व्यक्तित्वके प्रचारकी वासना छिपी रहती है। तुम यदि साधक पुरुष हो अथवा अपना पारमार्थिक कल्याण चाहते हो तो ऐसी वासनाको मनद्वारा कहीं किसी कोनेमें भी मत रहने दो। भगवान्‌की भक्ति और सदाचारका प्रचार भगवत्सेवाके लिये ही करो।

*याद रखो*—सच्ची बात तो यह है कि भगवद्भक्ति, ज्ञान और वैराग्य प्रचारकी चीज है ही नहीं। योग्य अधिकारीके द्वारा ही योग्य अधिकारीको इनका उपदेश होता है और तभी अच्छा फल भी होता है। **'शिव'**

# भक्तिका प्रभाव *

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका )

भगवान्‌की भक्तिकी बड़ी महिमा है। भक्तिका अन्तिम फल प्रेम है। भगवान्‌का नाम जपनेके समय स्वरूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये। निराकारके उपासकको यह खयाल रखना चाहिये कि परमात्मा निराकार आकाशकी भाँति सब भूतोंमें व्यापक है। जो साकारका उपासक है, वह सर्वशक्तिमान् परमात्माको अपने साथमें देखकर ध्यान करे। भक्तिसे सब दोषोंका नाश स्वत: ही हो जाता है—

**जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पाप को नाश।**
**जैसे चिनगी अग्निकी परी पुराने घास॥**

× × ×

**राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥**
**खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥**

(रा०च०मा० ७। १२०। ६, ९)

भीतरी और बाहरी दुष्ट उसके अंदर नहीं जाते। राज्यके सिपाही हमें तंग करते हैं, पर राज्यके हाकिमके सामने हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। काकभुशुण्डिजीके आश्रममें चार योजनतक ये दोष नहीं आते थे। वहाँ माया और मायाका कटक पासमें नहीं जाता था। उनके आश्रमकी ऐसी महिमा थी।

**गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥**

(रा०च०मा० ७। १२०। ७)

भक्तिका ऐसा प्रभाव है। प्रह्लादके लिये विष अमृत बन गया। मीराबाईके लिये विष अमृत हो गया। इस कलिकालमें भक्तिका साधन सुगम और सरल है। सबको भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये। भक्तिमें '**भज्**' धातु है। '**भज्**' माने भजन करना। सेवा, पूजा सब भक्तिका अङ्ग है। भगवान्‌की आज्ञाका पालन करना सबसे बढ़कर भक्ति है। भगवान् कहते हैं—

**सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥**

(रा०च०मा० ७। ४३। ५)

अर्जुन भगवान्‌की आज्ञाका पालन करनेवाला था, तभी भगवान्‌ने '**भक्तोऽसि मे सखा चेति**' कहा। भगवान्‌ने पूछा—क्या तुम्हारा मोह नष्ट हुआ? अर्जुनने कहा—

**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।**
**स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥**

(गीता १८। ७३)

हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अत: आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।

'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा' ऐसा कहा। यही सबसे बढ़कर भगवान्‌की भक्ति है। सेवा, आज्ञापालन, भगवान्‌के विग्रहका मानसिक पूजन करना—यह सब भक्तिका अङ्ग है।

**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।**

(गीता ९। ३४)

इस श्लोकार्धमें चार बातें हैं। मनसे भगवान्‌का ध्यान, वाणीसे भगवान्‌के नामका जप, हाथोंसे पूजा और शरीरसे साष्टाङ्ग प्रणाम—ये भक्तिके चार प्रधान अङ्ग हैं। जो ऐसा करता है वह निश्चय ही मुझे प्राप्त हो जाता है। इनका और अधिक विस्तार करें तो भक्तिके नौ अङ्ग हो जाते हैं—

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।**
**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥**

(श्रीमद्भा० ७। ५। २३)

'भगवान् विष्णुके नाम, रूप, गुण और प्रभावादिका श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान्‌की चरणसेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान्‌में दासभाव, सखाभाव और अपनेको समर्पण कर देना—यह नौ प्रकारकी भक्ति है।'

यह प्रह्लादजीने पिताके प्रति कहा था। इन सबका फल है भगवान्‌में प्रेम। भगवान् केवल प्रेम देखते हैं। बाहरका आडम्बर नहीं देखते। अतएव जिस किसी प्रकारसे हो, प्रेम होना चाहिये। प्रेममें दम्भ, कपट, पाखण्ड नहीं ठहरते। यदि ये हों तो दूर भाग जाते हैं। आसुरी सम्पदाके कोई लक्षण नहीं ठहर सकते। तुलसीदासजीने कहा है—

* प्रवचन—दिनाङ्क १९। ४। १९४७, प्रात:काल ७.३० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
(रा०च०मा० ७। १३७। १)

'भक्तिप्रियो माधवः' भगवान् प्रेमसे मिलते हैं। प्रेम हो गया तो भगवान् उसके पीछे-पीछे फिरते हैं, भगवान् प्रेमीके अधीन हो जाते हैं—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥
(रा०च०मा० १। २६। ६)

भगवान्का कथन है—

**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**
(गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उन्हें उसी प्रकार भजता हूँ। भगवान् प्रेमसे वशमें हो जाते हैं और प्रेमसे मिलते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
(रा०च०मा० १। १८५। ५)

हृदय दियासलाईकी पेटी है और भगवान्का नाम दियासलाई है। उसको घिसनेसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं। एक वैधी भक्ति है और दूसरी प्रेमलक्षणा, इन सबका फल प्रेम है।

प्रेमरसमें मग्न होनेपर अपने-आपका होश नहीं रहता। ऐसे प्रेममें मस्त होकर प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद—तीनों एक हो जाते हैं। संसारका स्नेह प्रेम नहीं, आसक्ति, लगाव, लाग, राग है और वह प्रेम बिलकुल विशुद्ध है, अनन्य और पूर्ण है। प्रेमका स्वरूप उत्तरोत्तर बढ़ता है। प्रभुके गुण, प्रभाव, स्वरूपको देख-देखकर प्रेम बढ़ना चाहिये। सारे संसारको आह्लादित करनेवाले भगवान्को अपने आचरण, प्रेमके व्यवहारसे मुग्ध कर देना—यही भगवान्में रमण करना है। नेत्रोंसे देखना, हाथोंसे सेवा करना, वाणीसे गुणगान करना, कानोंसे उनके नाम, गुण, प्रभावको सुनना, बुद्धिसे उनका निश्चय करना, मनसे मनन करना—ये सब इन्द्रियोंद्वारा रमण है। उनके गुणोंको याद करके दर्शन, स्पर्श, भाषण, चिन्तन करना—ये सब अमृतमय हैं, उन्हें सुन-सुनकर मुग्ध होये। ऐसा माने, मानो अमृतका पान कर रहे हैं, ऐसा अनुभव करे यह रसास्वाद लेना है। भगवान्की गन्ध, दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप—ये सब अमृतमय हैं। भगवान् प्रेमकी मूर्ति हैं। प्रेमी, प्रेमास्पद और प्रेम; भक्ति, भक्त और भगवान्—तीनों एक हैं। जातिसे एक हैं और स्वरूपसे अलग-अलग हैं। तीनों ही चेतन हैं। पहले तो यह मानसिक होता है फिर असली प्राप्तिरूप फल प्राप्त हो जाता है। भगवान् कहते हैं—

**मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।**
**कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥**
(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भगवान्के भजनका फल है भगवान्की प्राप्ति। भगवान् मिल जाते हैं उस समय क्रीड़ा और भी अलौकिक हो जाती है। उस समय भगवान्की चेष्टा भक्तको आह्लादित करनेके लिये और भक्तकी चेष्टा भी भगवान्को आह्लादित करनेके लिये होती है। अतएव हमारी सब चेष्टा भगवान्को मुग्ध करनेवाली हो और भगवान्की सब चेष्टाओंको देख-देखकर हमें मुग्ध होना चाहिये।

भगवान्की शरण होना सबसे उत्तम बात है। भगवान्की शरण होनेपर सब क्रिया और अपने-आपका भगवान्के प्रति समर्पण होता है, फिर उसके द्वारा कोई पापकर्म क्रियामें नहीं आता। उसकी जानकारीमें कोई पापकर्म नहीं बनता। स्वभावदोषके कारण यदि पाप बन जायगा तो उसका दण्ड नहीं मिलता। उसके लिये भगवान्के यहाँ छूट है, अतएव हमें हर प्रकारसे भगवान्की शरण होना चाहिये।
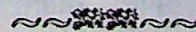
**दानव-देव, अहीस-महीस, महामुनि-तापस, सिद्ध-समाजी।**
**जग-जाचक, दानि दुतीय नहीं, तुम्ह ही सबकी सब राखत बाजी॥**
**एते बड़े तुलसीस! तऊ सबरीके दिए बिनु भूख न भाजी।**
**राम गरीबनेवाज! भए हौ गरीबनेवाज गरीब नेवाजी॥**
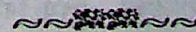
# नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थके परम रहस्यज्ञ श्रीराम

( ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज )

वस्तुतः नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थके परम रहस्यको मात्र श्रीराम ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं। यथा—

**नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु।**

(रा०च०मा० २। २५४। ५)

भगवती सीताके वनवासमें नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थका यथार्थ सामञ्जस्य हुआ है। लोकतन्त्रात्मक शासनकी यही विशेषता होती है कि शासनकी सम्पूर्ण गतिविधियाँ जनसमूहकी इच्छाका अनुसरण करनेवाली होनी चाहिये। अपने या भाई-भतीजोंके स्वार्थवश, शासन कभी जनसामान्यकी इच्छाको नहीं ठुकरा सकता। इस दृष्टिसे शासनकी सर्वोच्च सत्ता जनतामें निहित मानी जाती है। धर्मनियन्त्रित राजतन्त्रमें भी लोकतन्त्रके ये गुण बहुत उत्कृष्ट रूपमें व्यक्त होते हैं। भगवान् रामने अपनी प्रतिज्ञामें इन्हीं भावोंको व्यक्त किया है—

**स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।**
**आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥**

'स्नेह, दया, सुख आदि, किंबहुना हृदयेश्वरी जनकनन्दिनीको भी लोकरञ्जनके लिये त्यागना पड़ेगा तो भी मुझे व्यथा न होगी। आत्मा या आत्मीय जनोंके स्वार्थवश अविवेकी शासक जनताकी भावनाओंकी उपेक्षा करते हुए अर्थदण्ड अथवा कारागारदण्डका विधान करते हैं। अस्त्र-शस्त्र एवं तोप-बन्दूक आदिके बलपर जनताका मुख बंद करनेका असफल प्रयत्न करते हैं, परंतु समझदार शासक जानता है कि मात्र दण्ड-विधानसे जनताका मुँह बंद नहीं किया जा सकता और यदि बलपूर्वक मुँह बंद करनेका प्रयत्न किया भी गया तो फिर हजारों-हजारों मुखोंसे विरोधी आवाजें ही निकलेंगी। अपनी दुर्नीति बदलकर ही जनताका मुँह बंद किया जा सकता है, दण्ड-भयसे नहीं।

यद्यपि महाराज्ञी श्रीजनकनन्दिनी सीताके विरोधमें बहुमत नहीं था, कुछ ही लोगोंको इस बातपर आपत्ति थी कि रावणकी लङ्कामें कई महीनोंतक रहनेवाली सीताको श्रीरामजीने राजमहलमें क्यों रख लिया, इस प्रकार तो हमारे घरकी स्त्रियाँ भी बाहर रहकर पुनः घरोंमें रहने लग जायँगी और इससे मर्यादा अवश्य ही भङ्ग हो जायगी। उनको यह नहीं विदित था कि श्रीसीताजी अनन्त ब्रह्माण्डोंकी जननी, आनन्दसिन्धु श्रीरामचन्द्रके माधुर्यसार-सर्वस्वकी अधिष्ठात्री महाशक्ति थीं। उन्होंने लङ्काका अन्न-जल-फल ग्रहण किये बिना ही, इन्द्रप्रदत्त विशिष्ट चरुको एक ही बार ग्रहणकर, लङ्कामें कालयापन किया था। वे भानुकी प्रभा, चन्द्रकी चन्द्रिका एवं गङ्गाकी पवित्रताके तुल्य आनन्दसिन्धु भगवान् श्रीरामकी माधुर्यसार-सर्वस्वरूपा ही थीं। पुनश्च देवताओं, ऋषियों, वानरों एवं राक्षसोंके सामने श्रीसीताजीने अग्नि-प्रवेश किया और सबके समक्ष साक्षात् वैश्वानर अग्निने उनके पावित्र्यको प्रमाणित किया था। श्रीब्रह्मा एवं श्रीशिवने उनके पावित्र्यको परिपुष्ट किया था; तथापि उनका वर्णन श्रीरामके पक्षकी ओरसे होनेमें शासकीय प्रचारमात्र समझा जा सकता था। अतः श्रीरामने बहुमत नहीं, वरन् अल्पमतका भी आदर करते हुए श्रीसीताको अरण्यवास दिया और निष्पक्ष वीतराग महर्षियोंको अवसर दिया कि वे दूध-का-दूध और पानी-का-पानीके समान अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा प्रजाके सम्मुख वस्तुस्थिति रखें और हुआ भी ऐसा ही। जिस वनमें सीताको निर्वासित किया था वहाँसे कुछ दूर महर्षि वाल्मीकिजीका आश्रम था। उनके कुछ ब्रह्मचारी छात्र समिधा, कुश आदि लेनेके प्रसङ्गसे उधर पहुँच गये और उन्होंने ही उस अलौकिक दिव्य महाशक्तिके दर्शन एवं रोदनकी सूचना महर्षिको दी। महर्षि प्राचेतस—वाल्मीकिने अपने ध्यानयोगसे वस्तुस्थितिको समझकर सीतासे कहा—'पुत्रि! तुम्हारे पिता जनक मेरे मित्र हैं, तुम्हारे श्वशुर चक्रवर्ती दशरथ भी मेरे शिष्य थे, अतः पितृगृहतुल्य मेरे आश्रममें चलकर रहो।' श्रीसीता महर्षिके पीछे-पीछे चलकर आश्रममें आयीं, महर्षिने आश्रमकी ऋषि-पत्नियोंको उनकी देख-रेख, रक्षण-पोषण आदिके लिये नियुक्त किया। वहींपर उनके लव और कुश नामक

दो पुत्ररत्नोंका जन्म हुआ, जिनका संस्कार, शिक्षण-रक्षण सब महर्षिकी ही देख-रेखमें हुआ।

धर्मधुरन्धर चक्रवर्ती नरेन्द्र राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रद्वारा निर्वासिता सीताको अपने आश्रममें प्रश्रय देते हुए महर्षिने अपने उत्तरदायित्वको खूब समझ लिया था और उस मिथ्याभिशापका समूलोन्मूलन कर देनेके लिये वे कृतसंकल्प थे। विश्वविधाता ब्रह्मा भी यह सब महर्षि वाल्मीकिके द्वारा ही कराना चाहते थे। तमसाके तटपर विहारपरायण क्रौञ्च-युग्ममेंसे व्याधद्वारा क्रौञ्चके मारे जानेपर क्रौञ्चीका करुण क्रन्दन सुनकर महान् क्लेशानुभूति करनेवाले महर्षिके सामने सीताके करुण क्रन्दनका दृश्य आ गया। पहलेसे ही करुणरसपूरित वाल्मीकिका हृदय इस दृश्यसे आहत होकर छलक पड़ा और वही शोक—करुणरस श्लोक बनकर महर्षिके मुखारविन्दसे विश्वकल्याणके लिये प्रस्फुटित हो आया—**'शोकः श्लोकत्वमागतः'** (वा०रा० १।२।४०) शोक श्लोक बन गया।

श्लोक था—

**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।**
**यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥**
(वा० रा० १।२।२५)

भरद्वाज आदि शिष्योंने आदिकाव्यके इस प्रथम श्लोकको सुनकर धारण कर लिया। यह श्लोक लोकपितामह भगवान् ब्रह्माकी इच्छासे ब्राह्मी महाशक्ति सरस्वतीकी कृपासे व्यक्त हुआ था। श्लोकके ऊपरी अर्थमें तो निषाद (व्याध)-के लिये एक प्रकारका शाप ही है, यथा—'हे निषाद! तुम पुरुषायुष्यतक शान्ति या प्रतिष्ठा न प्राप्त कर सकोगे, क्योंकि तुमने क्रौञ्च-युग्ममेंसे एकको मार दिया है; परंतु अन्तरङ्ग अर्थ यह है कि रावण-मन्दोदरीरूप युग्म ही वे क्रौञ्चयुग्म थे। रामरूप लक्ष्मीपतिने ही रावणको मारा था। इस दृष्टिसे यह श्लोक आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण ही है, यथा—

हे मानिषाद अर्थात् लक्ष्मीपते! तुम **'शाश्वतीः समाः'** अनन्त कालतक प्रतिष्ठित रहो, क्योंकि तुमने रावण-मन्दोदरीरूप युग्ममेंसे एक रावणको मारकर वेद, धर्म, संस्कृति सबका ही रक्षण किया है।

अस्तु, महर्षिके हृदयमें उक्त दृश्यके कारण नितान्त क्षोभ था ही, आश्रममें लौट आनेपर भी वे उसी चिन्तामें निमग्न थे कि इतनेमें ही लोकपितामह ब्रह्माजी आश्रममें पधारे। महर्षिने पाद्य-अर्घ्य-मधुपर्कसे उनका पूजन किया और फिर रामवियुक्ता सीताके चिन्तनमें ही निमग्न हो गये।

ब्रह्माने बतलाया कि मेरी ही प्रेरणासे आदिकाव्य रामायणका यह प्रथम श्लोक आपके मुखसे प्रकट हुआ है। आप समाधिद्वारा राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, दशरथ, कौसल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा आदि सभीके हसित, भाषित, इङ्गित, चेष्टित आदिका प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर इसी प्रकारके श्लोकोंद्वारा राम-सीताके परम पवित्र चरित्रोंका वर्णन करें। मेरे प्रसादसे इस काव्यमें आपकी कोई भी वाणी अनृत न होगी—

**'न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥'**

इस प्रकार ब्रह्माकी प्रेरणासे महर्षिने समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा सीता एवं रामके सम्पूर्ण चरित्रका यथार्थ अनुभव कर दिव्य श्लोकोंमें शतकोटिप्रविस्तर रामायणका वर्णन किया। संवाददाताओं एवं टेलिप्रिंटरोंद्वारा भेजी गयी अथवा आँखों-देखी घटनाओंमें भी भ्रान्ति हो सकती है, परंतु ऋतम्भरा प्रज्ञाके द्वारा तो सर्वथा ऋत (सत्य)-का ही दर्शन होता है। और जगह तो काव्य-सौष्ठव आदिकी दृष्टिसे कुछ औपचारिक बातें भी लायी जाती हैं, परंतु यहाँ तो सीताचरित्र-वर्णनकी दृष्टिसे शुद्ध सत्यका ही वर्णन अपेक्षित था।

महर्षिने सीता-पुत्र लव और कुशका यथावत् संस्कार किया और वेद तथा धनुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि उपवेदोंका भी उन्हें साङ्गोपाङ्ग शिक्षण दिया। तत्पश्चात् वेदोंके उपबृंहणके लिये ही रामायणका अध्यापन किया और तन्त्री (वीणा)-के ताल और स्वरके साथ संगीतरूपमें रामायणका अभ्यास कराया। वे दोनों ही बालक दीपसे उद्भूत दो दीपोंके समान ही सर्वथा श्रीरामके ही अनुरूप थे। सीताराममय दिव्य दम्पतिकी दिव्य दीप्ति एवं प्रभासे युक्त थे। अश्विनीकुमारद्वयसे भी अत्यधिक सुन्दर वे दोनों बालक जब स्वरसम्पदासे युक्त वीणा-वादनपूर्वक रामायणका गायन करते थे तो सभी मोहित हो जाते थे। अनेक बार उनका रामायण-गान सुनकर

ऋषिगण मन्त्रमुग्ध हो जाते एवं प्रेमविह्वल होकर कोई ऋषि अपना कमण्डलु तो कोई मेखला आदि पुरस्कारके रूपमें देने लगते थे।

श्रीरामके अश्वमेध यज्ञमें निमन्त्रित होकर महर्षि प्राचेतस—वाल्मीकि आश्रमवासियोंसहित नैमिषारण्य पधारे हुए थे। महर्षि दोनों बालकों (लव और कुश)-को फल-मूल भोजन कराकर कुछ साथके लिये भी दे देते थे और कहते कि जाकर अवधवासियोंको रामायण सुनाओ और भूख लगनेपर अपने ही फल खाना, प्यास लगनेपर अपने-आप ही नदी या कूपसे जल निकालकर पीना एवं किसीके कुछ देनेपर भी लेना नहीं। परंतु जो श्रद्धासे सुने उसे रामायण सुनाना।

महर्षिके आदेशानुसार दोनों बालकोंने अयोध्याकाण्डका ही प्रसङ्ग अवधवासियोंको सुनाना प्रारम्भ किया, जो भी इस प्रसङ्गको सुनता मन्त्रमुग्ध हो जाता। आँखों-देखी पुरानी घटनाओंका प्रत्यक्ष चित्र उनके सामने उपस्थित हो जाता था। कितना सुन्दर, सत्य, सरल एवं हृदयस्पर्शी था वह चरित्र-चित्रण, जिसे सुनकर सबको आश्चर्य हो जाता था! लोग बालकोंके गानसे प्रभावित होकर उन्हें बहुत कुछ देना भी चाहते थे, किंतु वे कुछ न लेते थे। यह समाचार रामदरबारमें भी गया। वहाँ भी सबको उस आश्चर्यजनक चरित्र-चित्रणके श्रवणद्वारा रसास्वादनकी उत्सुकता हुई। अश्विनीकुमारोंके तुल्य सुभग सीता-पुत्रोंने ऋषिकुमारोंके रूपमें, वहाँ भी अपने स्वर, संगीतसौष्ठव तथा सौम्य-सुन्दर-दिव्य आकृतिसे सबको प्रभावित कर दिया। उनके रामायण-गानसे राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, वसिष्ठादि महर्षि एवं अमात्यवर्ग आदि सभी मोहित हो उठे। श्रीरामचन्द्रने रामायण-गानके अन्तमें लक्ष्मणको आदेश दिया कि इन बालकोंको शतभार सुवर्ण एवं रत्न प्रदान किया जाय, परंतु उन्होंने तो परम निःस्पृहरूपसे स्पष्ट कहा कि हमलोग कन्दमूलफलाशी, वल्कलवसनधारी आश्रमवासी हैं, हमें आपके सुवर्ण-रत्नोंकी अपेक्षा नहीं। पुनश्च यदि आपलोगोंकी इच्छा हो तो हमलोग रामायण-श्रवण करा सकते हैं। विशेषरूपसे रामायण-श्रवणका प्रबन्ध किया गया। गण्यमान्य ऋषि, महर्षि, राजर्षि, चातुर्वर्ण्य प्रजाके विशेष प्रतिनिधि, देव, असुर, गन्धर्व सभी वहाँ उपस्थित हुए। उन दोनोंने लोकोत्तर सौन्दर्य, अद्भुत वेदवेदाङ्गपाण्डित्य, दिव्य वीणावादन और मनोहर स्वर, परम निःस्पृहता एवं अद्भुत त्यागसे सबके मनको वशमें कर लिया।

ऊँचे-से-ऊँचे गुण भी सस्पृहतासे फीके पड़ जाते हैं। सस्पृहकी अच्छी-से-अच्छी और सच्ची बातोंपर लोगोंको आदर एवं विश्वास नहीं होता, परंतु जो निःस्पृह एवं त्यागी होता है उसी वक्ताका जनतापर समुचित प्रभाव पड़ता है। फिर यहाँ तो कहना ही क्या? निःस्पृह परम विरक्त महर्षिकी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा प्रत्यक्षदृष्ट **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** रामायण महाकाव्यका निःस्पृह ऋषिकुमारोंद्वारा गायन सुनकर सबको वर्णित घटनाके सम्बन्धमें पूर्ण विश्वास हो गया। स्थालीपुलाकन्यायसे सम्पूर्ण चरित्रकी सत्यतामें सबका विश्वास हो गया। अयोध्याकाण्डकी सत्य घटनाओंको सुनकर अरण्य, किष्किन्धा एवं लङ्काकाण्डके चरित्र-श्रवणकी सबको उत्कट उत्कण्ठा हुई। सीता-चरित्रकी जिज्ञासा भी जागरूक थी ही। सबने सत्य घटनाओंको मन्त्रमुग्धकी भाँति सुना और श्रद्धा तथा विश्वाससे भगवती सीताके परम पवित्र चरित्रकी प्रशंसा की। कुटिलोंको भी अपनी दुर्भावनापर पश्चात्ताप हुआ।

**'सीतायाश्चरितं महत्'** (वा० रा० १।४।७)-के अनुसार श्रीरामायणमें प्रधानरूपसे सीता-चरित्रका वर्णन था, परंतु पतिव्रता सीताका चरित्र तबतक अपूर्ण ही रहता जबतक उनके पति भगवान् रामके चरित्रका वर्णन न होता। अतः उसमें रामचरित्रका वर्णन भी किया गया।

यह वर्णन राजकीय प्रचारमात्र न था, किसी राजकीय कविकी काव्य-कल्पना न थी, किंतु यह थी राज्याश्रयसे दूर रहकर, राजान्नसे बचकर, कन्दमूल-फल तथा वल्कलवसनपर निर्भर, तपोनिष्ठ, समाधिसम्पन्न महर्षि प्राचेतस—वाल्मीकिकी समाधि-भाषा, जिसका गान कर रहे थे उन महर्षिके ही परम शिष्य, परम विद्वान्, परम त्यागी, वनवासी देवीके पुत्र लव और कुश। ऐसी स्थितिमें जनताका सुस्थिर विश्वास क्यों न होता और कुटिल हृदयोंके भी काले कल्मष उससे क्यों न धुल जाते! सभीके हृदय पिघल गये, कण्ठ गद्गद हो गये, अङ्ग रोमाञ्चकण्टकित

हो उठे, आँखोंसे आनन्दाश्रु एवं शोकाश्रुकी धाराएँ बह निकलीं। राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, माताएँ एवं परिवारके अन्य लोग भी प्रेम-समुद्रमें निमग्न हो गये। वसिष्ठादि ऋषिगण भी प्रेमोद्रेकमें अधीर हो उठे। महाशक्ति भगवती चिदानन्दस्वरूपा सीताके उज्ज्वल चरित्रने सबके अन्तःकरण एवं अन्तरात्माको उद्द्योतित कर दिया। महर्षि वाल्मीकिके रामायण महाकाव्यसे सबको स्पष्ट विदित हुआ कि भगवती सीताके असाधारण तेजके सामने रावणका प्रभाव सर्वथा नगण्य था। श्रीसीता अपने अखण्ड पातिव्रत तेजके प्रभावसे रावणकी सत्तामें रहती हुई भी रावणको तृणतुल्य समझती थीं। उन्होंने कहा भी था—

'रे दुष्ट रावण! सावधान, मेरे भगवान् रामका संदेश एवं आदेश न होने और अपने तपस्या-पालनके अभिप्रायसे मैं तुझे अपने तेजसे भस्म नहीं कर रही हूँ। अन्यथा मैं क्षणभरमें तुम्हें अपने भस्मार्ह तेजसे भस्म कर सकती हूँ।'

**असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।**
**न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥**
(वा० रा० ५।२२।२०)

ऐसे अवसरोंपर रावणमें सीताजीके सामने स्थिर रहनेकी हिम्मत नहीं रहती थी। यह कोई कवि-कल्पना नहीं, अपितु महर्षिकी समाधि-भाषाकी सत्य वाणी है।

वहीं कुछ क्षणोंके पश्चात् जब राक्षसियोंने सीताको यह समाचार सुनाया कि 'सीते! जो वानर आपके पास आया था, वह पकड़ लिया गया और उसकी पूँछमें घृत एवं तेल-सने वस्त्र लपेटकर आग लगा दी गयी' तो उन्होंने अग्निसे कहा—'अग्ने! यदि मैंने समुचितरूपसे गुरुशुश्रूषा की है और ठीक तपस्या तथा पातिव्रत-धर्मका परिपालन किया है तो तुम हनुमान्के लिये शीतल हो जाओ—

**यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।**
**यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥**
(वा० रा० ५।५३।२७)

भगवती सीताके आदेशानुसार दहनशील अग्निदेव शीतल हो गये। श्रीहनुमान्को आश्चर्य हो रहा था कि मेरी पुच्छाग्निसे सम्पूर्ण लङ्का भस्मीभूत हो रही है, परंतु मेरी पूँछमें तो उष्णताका लेश भी नहीं प्रतीत हो रहा है। हनुमान्ने निश्चय किया था कि यह महाशक्ति सीताके तप एवं त्याग तथा पातिव्रतका ही प्रभाव है।

जो सीता अपने प्रभावसे अग्निको ठण्डा कर सकती थीं वे अवश्य ही अपने तेजसे रावणको भस्म कर सकती थीं, यह बात सरलतासे समझी जा सकती है।

सीताजीके विरोधी कुटिल समाजने भी उनका भक्त होकर पश्चात्तापकी अश्रुधाराओंसे अपने कल्मषोंको धो डाला। यह थी महर्षि वाल्मीकिकी लोकोत्तर सुमधुर कृतिकी कुशलता। वे अपने उद्देश्यमें पूर्ण सफल हुए और यह थी श्रीरामचन्द्रजीकी नीति, जिसके फलस्वरूप ये घटनाएँ घटित हुईं। जो काम किसी दण्डविधानसे कभी सम्भव नहीं था वह उनकी नीतिसे अनायास सुसम्पन्न हुआ। फिर तो वसिष्ठजीने भी अपनी तपस्या एवं योगबलके प्रभावसे सत्य वस्तुका साक्षात्कार करके जनताको सीताचरित्रकी निर्मलताका ज्ञान कराया। त्रिजटा एवं विभीषण-पत्नीने भी सीताके परम पवित्र चरित्रका बखान किया। अन्तमें परमानन्द सच्चिन्मयी पराम्बा सीताका अपने परम दिव्यरूपसे महामहिम वैभवशालिनी माधवी देवीके अङ्कमें प्रत्यक्ष प्राकट्य भी सबकी भ्रान्तियोंको मिटाकर उनकी परम उपास्यताका प्रमाण बना। (क्रमशः)

प्रेषक—श्रीबिहारीलालजी टाँटिया

**बरसत आनँद-रस कौ मेह।**
**स्यामा-स्याम दुहुन कौ बिगसित दिव्य मधुर रस नेह॥**
**सरस रहत सुचि दैन्य-भाव तैं कबहुँ न उपजत तेह।**
**निजसुख-त्याग परस्पर के हित, सब सुख साधन येह॥**
**भाव रहत नित बस्यौ रसालय, रस नित भाव-सुगेह।**
**नित नव-नव आनंद उदय, नहिं रहत नैक दुख-खेह॥**
(पद-रत्नाकर)

# सबमें भगवान् कैसे देखें और व्यवहार कैसे करें

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

भगवान् एक हैं, दो नहीं। सत्य एक है, दो नहीं। इस सत्यको प्राप्त करनेके विभिन्न मार्ग हैं और मार्ग अपनी-अपनी दिशासे अलग-अलग चलते हैं। मार्गोंकी एकता असम्भव है। कोई यह कहे कि रामेश्वरम्से ऋषिकेश आनेवाला और आसामसे ऋषिकेश आनेवाला एक मार्गसे आ जाय तो यह पागलपन है, यह कभी सम्भव ही नहीं। इसी प्रकार साधनमें भी एकता सम्भव नहीं। साधनमें एकता होती नहीं, होगी नहीं। विभिन्न रुचि है, विभिन्न अधिकार है, विभिन्न बुद्धिका स्तर है, अलग-अलग समझ है, किसीकी बुद्धिमें बड़ी सूक्ष्मता है, किसीकी बुद्धि स्थूल है, किसीका विचार-प्रधान जीवन है तो किसीका भाव-प्रधान। अत: सबके लिये साधन एक-सा नहीं हो सकता, परंतु साध्य एक होता है और परमार्थमें तो साध्य दो है ही नहीं।

इसलिये किसी भी दूसरेकी बातका खण्डन करे नहीं, उसे नीचा माने नहीं, अपनेको ऊँचा मानकर अभिमान करे नहीं, अलग माने नहीं और अपनेवालेको छोड़े नहीं। रामका उपासक यह माने कि शिवके नाम-रूपसे, विष्णुके नाम-रूपसे, देवीके नाम-रूपसे, सूर्यके नाम-रूपसे, ब्रह्मके अरूप-अनामसे, ईसाइयोंके Almighty God नामसे, मुसलमानोंके अल्लाह-खुदाके नामसे—एक ही सत्यका सब जगह पूजन होता है। अपनी आँखसे देखनेपर उसे सत्यके स्वरूपमें कहीं-कहीं अतारतम्य भले ही मालूम पड़े, परंतु वस्तुतत्त्व जो सत्य है वह दो नहीं है और उस सत्यको प्राप्त करनेके विभिन्न मार्ग हो सकते हैं। इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जिस मार्गपर हमलोग चल रहे हैं उस मार्गपर चलनेमें हम कहीं गिर तो नहीं रहे हैं, उलटा मार्ग तो नहीं है। वस्तुत: उलटा मार्ग तो वही है जिससे हमारे जीवनमें आसुरी सम्पत्ति बढ़ने लगे। भोगोंकी अभिलाषा हो और उनमें अनुरक्ति बढ़ने लगे, बुरे कामोंमें प्रवृत्ति और उत्साह होने लगे, भगवान्से सम्पर्क हटने लगे, राग-द्वेष विशेष पुष्ट होने लगे तो समझना चाहिये कि कहीं-न-कहीं हमारे मार्गमें त्रुटि है, सुधार अपेक्षित है। हिमालयकी ओर चलें तो ठंडक मिलेगी ही। इसी प्रकार भगवान्की ओर चलते रहें तो धीरे-धीरे दैवी-सम्पत्तिके दर्शन होंगे ही। इतना-सा सावधान रहे फिर अपने मार्गपर चलता रहे। दूसरे मार्गकी ओर न देखे और न उसका खण्डन करे। यही सबसे अच्छी नीति है।

लोग भगवन्नाम-जपके लिये पूछते हैं कि नाम कौन-सा जपें? इसका उत्तर यही है कि जो अपनेको अच्छा लगे, वही जपें। अपने यहाँ हिंदू शास्त्रोंमें, हिंदू ग्रन्थोंमें नामकी बड़ी महिमा है और विभिन्न ग्रन्थोंमें भगवान्के सभी नामोंका यशोगान किया गया है। विष्णु, राम, शिव, हरि—न मालूम कितने भगवान्के नाम हैं, अनन्त। तुलसीदासजी महाराजने बड़ी सुन्दर बात बतायी है कि राम-नाम ही सर्वोपरि है। चैतन्य महाप्रभु कहते हैं कि श्रीकृष्ण-नाम सर्वोपरि तो निश्चित ही है। क्या हर्ज है? एकके अनेक नाम, जिसको जो प्रिय लगे उसके लिये वह सर्वोपरि और यह बात ठीक भी है। यही बात भगवान्के रूपके सम्बन्धमें भी है। भगवान् कृष्णका उपासक यह समझे कि शिवके उपासक, रामके उपासक, विष्णुके उपासक—ये सब मेरे ही कृष्णकी अन्य नामोंसे उपासना कर रहे हैं। उनका खण्डन नहीं करना चाहिये और अपने अभीष्ट देवको छोड़ना भी नहीं चाहिये। तुलसीदासजी महाराजने श्रीकृष्ण-गीतावलीमें श्रीकृष्णकी बाललीला और निकुञ्जलीलाके कुछ ऐसे सुन्दर पद लिखे हैं मानो दूसरे सूरदास बोल रहे हों। उनके मनमें श्रीकृष्ण और राममें कोई विरोध रहा हो, ऐसी बात नहीं है। किसी तत्त्वज्ञाताके मनमें विरोध रह ही नहीं सकता। पर तुलसीदासजी जब भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके श्रीविग्रहके सामने पहुँचे तब उनके त्रिभङ्गललित, मुरली-मनोहर मयूरमुकुटवाले स्वरूपको देखा और मुग्ध हो गये, प्रसन्न हो गये, बोले—

**'कहा कहूँ छबि आजु की भले बने हो नाथ।'**

हे नाथ! हे राघवेन्द्र! आजकी छवि क्या कही जाय।

यह तो नयी छवि देखनेमें आ रही है। धनुषके बदलेमें मुरली है और रत्नकिरीटके बदलेमें आपके मस्तकपर यह मयूरपिच्छ शोभा पा रहा है। उन सीधे-सादे खड़े तने हुए राजकुमारके बदलेमें यह त्रिभङ्गललित—तीन जगह टेढ़ लिये खड़े हुए हैं—बड़ा सुन्दर रूप है पर—

'तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुष बाण हो हाथ॥'

महाराज! हैं तो आप वही, दूसरे नहीं हैं, बड़े सुन्दर हैं, परंतु नाथ! अगर मुझसे सिर झुकवाना है तो धनुष-बाण ले लो हाथमें। और तब—

'मुरली मुकुट दुराय के नाथ भये रघुनाथ।'

भक्त ऐसा कहते हैं, चाहे यह कल्पना हो पर सिद्धान्त सत्य है। भगवान्के किसी रूपमें परायापन न करे और जिस रूपकी उपासना करे उसे छोड़े नहीं। यह सिद्धान्तकी बात है। यदि बार-बार मनुष्य अपने साधनको बदलता रहेगा तो साधनामें वह सिद्ध नहीं हो सकता। यदि साधक बार-बार मार्ग बदलता है तो किसी भी मार्गपर आगे नहीं बढ़ सकता। मार्गका निश्चय करनेके समय ही साधक ठीक निश्चय कर ले और उस मार्गपर आगे बढ़ता रहे तो उसे मार्ग बतानेवाले मिलते रहेंगे एवं वह अग्रसर होता रहेगा।

भगवान्को प्राप्त करनेके अनेक मार्ग हैं—

**रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां**
**नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥**

समुद्र एक ही है और नदियाँ विभिन्न मार्गोंसे समुद्रके अंदर अपनेको समा देनेके लिये—मिला देनेके लिये टेढ़ी-सीधी चली जा रही हैं। इसी प्रकार भगवान्की ओर सब चलते हैं, चलना चाहिये। किसीका विरोध न करे और अपनेवालेको छोड़े नहीं।

सर्वत्र भगवद्दर्शनके लिये तीन बातें हैं, सर्वोत्तम बात तो यह है कि सबमें अपने भगवान्को देखे—ब्राह्मण हो या चाण्डाल, पशु हो या पक्षी, जड़ हो या चेतन। यह एक सुन्दर साधन है, अगर हमलोग कर सकें तो बड़ा सुन्दर, दिनभर भगवान्की पूजा होगी। जितने लोगोंसे हमारा व्यवहार पड़े—कम-से-कम व्यवहारसे आरम्भ करें। घरमें शुरू कर दें। छोटा बच्चा सामने आया, माँके सामने आया, पिताके सामने आया तो उसके सामने आते ही मनमें यह धारणा कर ले, याद कर ले कि इस बच्चेके रूपमें मेरे प्रभु खड़े हैं। मन-ही-मन प्रभुको प्रणाम करे। मन-ही-मन बच्चेको प्रणाम करे और प्रणाम करके यह कह दे कि इस समय आप इस बच्चेके रूपमें हैं और मैं पिताके रूपमें हूँ। स्वाँगके अनुसार अभिनय होगा। मैं पिताके रूपमें व्यवहार करूँगा आपसे और आप पुत्रके रूपमें, परंतु नाथ! व्यवहार करते समय मैं भूलूँ नहीं कि इस रूपमें आप हैं। सफाई करनेवाली आ गयी तो उस रूपमें भगवान्को देखिये और हैं भगवान् निश्चित। उसके साथ खानेका आग्रह नहीं, पर उसको भगवान् समझनेका जरूर आग्रह है। उसे भगवान् मानिये और मन-ही-मन उसे प्रणाम कीजिये कि इस रूपमें नाथ! आप सामने खड़े हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अब आप सफाई करेंगे। इस समय आपका यह अभिनय है और मैं इस समय मालिक बनकर बैठा हूँ, पर इस कामको करते समय भी मैं पहचान सकूँ कि आप मेरे स्वामी हैं, दूसरे कोई नहीं। इससे उस सफाईवालेके साथ दुर्व्यवहार नहीं होगा। ऐसा नियम बना ले। इसको श्रीमद्भागवतमें 'मृत्युञ्जययोग' कहा गया है। एकादश स्कन्धके अन्तमें आया है कि गाय, गधा, सूअर, ऊँट—इन सबको दण्डवत् प्रणाम करे। हम चाहे शरीरसे दण्डवत् प्रणाम न करें, पर मानसिक रूपसे तो करें ही। महाराष्ट्रमें एक स्वामी हुए, उनका नाम था 'दण्डवत् स्वामी'। दण्डवत् स्वामी नाम इसीलिये पड़ा कि वे सबको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते थे। दण्डकी भाँति—लकड़ीकी भाँति जमीनपर गिरकर प्रणाम करते थे। वैसा हम न करें परंतु यह अवश्य समझ लें, मान लें कि प्रत्येक रूपमें हमारे सामने भगवान् आते हैं, दूसरा कोई आता ही नहीं। इस भावसे हम घरमें व्यवहार शुरू करें तो वह बड़ी सुन्दर चीज होगी।

**यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।**
**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥**

(गीता १८। ४६)

जिनसे यह सब निकला और जो सबमें व्याप्त हैं—फैले हुए हैं—छाये हुये हैं, उन भगवान्का अपने कर्मके

द्वारा पूजन करे। तब घरमें, दूकानमें, कोर्टमें, गङ्गाजीके तीरपर, जंगलमें—जहाँ भी हम जायँगे वहाँ हमको भगवान् हमारे साथ और हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिये तैयार मिलेंगे। हम निश्चय करें कि रातको सोते हुए नींदके द्वारा उनकी पूजा करेंगे। हम भोजन करते समय भोजन करनेकी क्रियाके द्वारा उनकी पूजा करेंगे। हम किसीसे बातचीत करते समय उस बातचीतके द्वारा भगवान्‌का पूजन करेंगे। बस, हमारा भाव स्वकर्मसे पूजा बन जाय और जिससे हम बात करें उसमें हमारी भगवत्-बुद्धि हो जाय। ऐसा यदि हो जाय तो दिनभर भगवान्‌के दर्शन, दिनभर भगवान्‌की पूजा, दिनभर भगवान्‌का संग प्राप्त होता रहेगा। दिनभर भगवान्‌की पूजाका यह एक सर्वोत्तम योग, तरीका, साधन है।

अतः सबमें भगवान्‌को देखें। यह अगर न हो तो दूसरा तरीका यह है कि सबमें अपने-आपको देखें। वह भक्तिकी भावना है और यह ज्ञानकी भावना कि सबमें अपनी आत्माको ही देखें—

**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥**

(गीता ६। २९)

आत्मामें समस्त प्राणी हैं। समस्त भूत आत्मामें और आत्मा समस्त भूतोंमें है। अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा आत्मा ही ओत-प्रोत है। सारे प्राणियोंमें आत्मा भरी है और सारे प्राणी आत्मामें भरे हैं—इस प्रकार निरन्तर सबमें अपने-आपको देखें। इससे स्वाभाविक ही एक बड़ी सुन्दर चीज आयेगी जीवनमें—समस्त समता अपने-आप आ जायगी; चाहे व्यवहारमें भेद रहे और यह रहेगा भी। प्रायः यह कहा जाता है कि व्यावहारिक भेदको मिटा देना चाहिये, पर यह बात पागलपनकी है। पारमार्थिक भेद तो मिटाना आवश्यक है नहीं तो अज्ञान रहेगा। सोना सब समय सोना रहता है। गहना बना तब भी सोना और गहना गला दिया जायगा तब भी सोना, पर सोनेके बने हुए कंगन और हारमें नाम और रूपके अनुसार अगर भेद नहीं रखा जायगा तो लोग पागल कहेंगे और व्यवहार बनेगा नहीं। हाथके कंगन गलेमें नहीं आयेंगे और गलेका हार कोई हाथमें नहीं पहनना चाहेगा। एक-सा सोना अगर समान वजनका है तो एक दामका होगा। हमारे शरीरमें पैरसे लेकर चोटीतक आत्मा समान है। कहीं चोट लगी हमको लगी, कहीं दर्द हुआ हमको हुआ, कहीं सुख मिला हमको मिला। कोई बोले कि भई, जाड़ेमें सिर ढक लो, पैर मत ढको, पैर तो नीचे हैं, इन पैरोंको जाड़ेमें मरने दो। क्या हम इसके लिये तैयार हैं? पैर भी हम सिर भी हम। दोनोंमें आत्माकी समानता है, परंतु व्यवहारमें यहाँतक भेद होगा कि वक्तपर यदि कहीं गैंगरीन हो जाय और ऊपरतक मवाद फैल जाय तथा डॉक्टर कहे कि पैर यहाँसे जरा काटना पड़ेगा तो हम कहेंगे कि भई, नहीं काटो। जहाँतक बने न काटो, परंतु अगर न काटनेसे ऊपरके सारे अंग सड़-गल जाते हों, नष्ट हो जाते हों तो काट दो। अपने पैरको हम अपने-आप कटाते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि इस पैरमें आत्मभावनामें कहीं कमी हो गयी। यह भेद होता है और व्यवहार-भेद तो होता ही है। पैरसे चलनेका काम होता है और मस्तिष्कसे सोचनेका काम। अब कहीं हम दिमागसे कह दें कि तुम पैरका काम करो और पैरसे कह दें कि तुम दिमागका काम करो तो दोनोंके काम बिगड़ जायँगे। काम होगा ही नहीं। आज भी साम्यवादी देशोंमें दिमागी काम करनेवाले वैज्ञानिक जो अन्वेषणकर्ता हैं क्या वे फावड़ा लेकर खेतोंमें जाते हैं? जायें तो काम हो ही नहीं सकता। इसी प्रकार खेतोंके मजदूर, क्या वैज्ञानिक-आविष्कार कर सकते हैं? वे ऐसा नहीं कर सकते। रोटी सबको मिलनी चाहिये, कपड़े सबको मिलने चाहिये, सम्मान सबका बना रहना चाहिये, जिंदगी सबकी मूल्यवान् है, सबकी जिंदगीका पोषण होना चाहिये। ऐसा न करना पाप, घृणा करना पाप, नीचा समझना पाप; पर काम सबका एक-सा हो जाय, तब साम्यवाद आयेगा—यह कभी जगत्‌में आजतक आया नहीं, आयेगा नहीं, आ सकता नहीं। **[ क्रमशः ]**

**जो मनुष्य ईश्वरके सिवा न किसीसे डरता है, न किसीकी आशा रखता है, जिसे अपने सुख-संतोषकी अपेक्षा प्रभुका सुख-संतोष अधिक प्रिय है, उसीका ईश्वरके साथ मेल है।**

# शरणागति और नाम-संकीर्तन—सर्वोपरि साधन

( श्रीहरिहरजी उपाध्याय )

भारतीय दर्शन पुनर्जन्मको मानता है। उसकी मान्यता है कि जीवको अपने शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार चौरासी लाख योनियोंमें जन्म लेना पड़ता है और इस प्रकार जन्म-मरणका चक्र तबतक चलता रहता है, जबतक जीवात्मा मुक्त नहीं हो जाता। सभी योनियोंमें जीवके साथ उसके पूर्वकृत कर्मोंका संचित संस्कार लगा रहता है, जिसे कर्मबन्धन कहा जाता है। मनुष्यको छोड़कर अन्य सभी योनियोंमें जीव अपने कर्मका फल भोगता है अर्थात् वे भोगयोनियाँ हैं, किंतु मनुष्य-शरीर मिलनेपर वह अपने सत्कर्मोंद्वारा अशुभ प्रारब्धोंमें परिवर्तन कर सकता है और नये शुभ संस्कारोंका निर्माण भी कर सकता है। इसीलिये कहा गया है कि मनुष्य-शरीर बड़े सौभाग्यसे मिलता है—

**बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥**
**साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥**

(रा०च०मा० ७। ४३। ७-८)

इस सुरदुर्लभ मानव-शरीरको पाकर जिसने अपना परलोक नहीं बना लिया, उसके जैसा भाग्यहीन कौन होगा? यह मानव-शरीर जीवको कभी उसके कर्मके फलस्वरूप मिलता है और कभी-कभी ईश्वर अपनी अहैतुकी कृपासे उसे यह शरीर प्राप्त करा देते हैं। जिससे वह सत्कर्मोंमें प्रवृत्त होकर अपना कल्याण कर सके—

**कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥**

(रा०च०मा० ७। ४४। ६)

जीवको यह देवदुर्लभ शरीर देकर परमेश्वर उससे यह अपेक्षा करते हैं कि वह इस अवसरका लाभ उठाकर अपना उद्धार करेगा और अपने पूर्वजन्मोंके संचित कषायकल्मषोंको धोकर अपने मूल (आत्म)-स्वरूपको प्राप्तकर परमात्मासे पुनः तादात्म्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेगा, किंतु कितने लोग ऐसा कर पाते हैं? लाखोंमें कोई एक ऐसा अपवादस्वरूप होता है, जो अपने पुण्य-पुरुषार्थके बलपर परमार्थसिद्धि करनेमें सफल हो पाता है। अन्य मनुष्य-शरीरधारी तो इस जन्ममें भी परमात्मासे विमुख होकर और संसारके माया-मोहमें अहर्निश लिप्त रहकर अपने पापका बोझ ही बढ़ाते हैं। ऐसे मनुष्य इस जीवनमें भी नये कुसंस्कारोंका सृजन कर पुनः चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं।

इसका पहला कारण तो मनुष्यका अपना कुसंस्कार और कर्मजनित प्रारब्ध है, जो उसे सत्कर्म और धर्माचरणमें प्रवृत्त नहीं होने देता। दूसरा कारण देश-कालकी प्रतिकूल परिस्थितियाँ हैं, जो उसके सन्मार्गपर चलनेमें बाधक होती हैं। युगधर्म भी उसके विचार-आचरणको प्रभावित करता है। कलियुगमें सभी मनुष्योंके लिये कठोर साधना-उपासना और जप-तप करना सम्भव नहीं है। विकृत सामाजिक परिवेश भी इस कार्यमें बाधक हैं। कलियुगमें धर्मके चार चरणों (सत्य, शौच, दया और दान)-में प्रथम तीन चरण तो लुप्तप्राय हैं। चौथा चरण दान भी नाममात्रको ही रह गया है। सात्त्विक दानका सर्वथा अभाव है। राजस और तामस दान ही प्रचलित हैं। मनुष्यका मन सदा पापकर्मोंमें ही रत है। गोस्वामीजी लिखते हैं—

**ध्यानु प्रथम जुग मखबिधि दूजें। द्वापर परितोषत प्रभु पूजें॥**
**कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥**

(रा०च०मा० १। २७। ३-४)

प्रथम (सत्य-) युगमें ध्यानसे, दूसरे (त्रेता-) युगमें यज्ञसे और द्वापरमें पूजनसे ईश्वरको प्रसन्न किया जाता था, किंतु कलियुग तो पापकी जड़ और मलिन है। इसमें मनुष्यका मन पापसे कभी अलग होना ही नहीं चाहता है! अतः ध्यान, यज्ञ और पूजन नहीं हो सकते हैं। ऐसी परिस्थितिमें विचारणीय यह है कि इस कलियुगमें मनुष्यका उद्धार कैसे हो? इस समस्यापर सम्यक्-रूपसे विचारकर संतोंने अत्यन्त सरल समाधान प्रस्तुत किया है, जिसका उल्लेख धर्मग्रन्थोंमें मिलता है।

कलियुगमें पापाचार-लिप्त मनुष्योंका उद्धार भगवान्‌के चरणोंमें शरणागति और भगवन्नामके जप (संकीर्तन)-से ही हो सकता है। ये दोनों ही साधन सर्वसुलभ, सरल और सुगम हैं। शरणागति भावनासे होती है। इसके लिये बाह्य औपचारिकता अनिवार्य नहीं है। दीन और आर्तभावसे ईश्वरकी शरणमें जाना ही शरणागति है। भगवन्नामके जप अथवा संकीर्तनमें अन्य मन्त्रोंकी भाँति न्यास और विनियोग

आदि विधि-विधान अपेक्षित नहीं हैं। भगवान्‌के किसी भी नामका जप कभी भी, किसी स्थानपर और किसी भी अवस्थामें किया जा सकता है। इसमें अधिकारी और अनधिकारीका भी प्रश्न नहीं है। सभी मनुष्य (पुरुष या स्त्री) ईश्वरके नामका संकीर्तन करनेके समानरूपसे अधिकारी हैं।

अब इन दोनों साधनोंपर संक्षिप्त विचार किया जाता है—

### शरणागति

भगवान्‌के शरणागत हो जाना—यह सभी साधनोंमें श्रेष्ठ है। शरणागत भक्त अपने योगक्षेमके लिये पूर्णरूपसे ईश्वरपर आश्रित हो जाता है एवं उनके प्रत्येक विधानको अपने लिये हितकर तथा मङ्गलजनक मानकर उसे सहर्ष स्वीकार करता है। शरणागतिके छः लक्षण कहे गये हैं—

**आनुकूल्यस्य संकल्पात्प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।**
**रक्षिष्यतीति विश्वासो गोमृत्वे वरणं तथा।**
**आत्मनिक्षेपः कार्पण्यः षड्विधा शरणागतिः॥**

अर्थात् अपने इष्टदेवके प्रति सभी प्रकारकी प्रतिकूलताको त्यागकर सब प्रकारसे उनके अनुकूल रहनेका दृढ़ निश्चय, उनके रक्षाविधानमें पूर्ण विश्वास, कार्पण्य भावसे (अहंकार त्यागकर) उनके प्रति आत्मसमर्पण करना शरणागति है। शरणागतिमें अनन्यता और पूर्ण निर्भरता आवश्यक है। शरणागत भक्त अपने योगक्षेमके लिये स्वयं कोई चिन्ता नहीं करता है और न अपने प्रयत्न-पुरुषार्थपर भरोसा करता है। वह प्रत्येक कार्य ईश्वरप्रीत्यर्थ करता है और शुभाशुभ कर्मोंके फलाफल (पुण्य-पाप)-का भार भी ईश्वरपर छोड़ देता है। श्रीमद्भगवद्गीता (१८।६६)-में भगवान् श्रीकृष्णने पूर्ण शरणागतिकी व्याख्या करते हुए अर्जुनसे कहा था कि सभी धर्मोंका आश्रय छोड़कर तुम मेरी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तू शोक (चिन्ता) मत कर—

**सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
**अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

इसी प्रकार भगवान् श्रीरामने भी शरणागत भक्तको सभी पापोंसे मुक्त कर देनेका संकल्प व्यक्त किया है—

**सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥**
(रा०च०मा० ५।४४।२)

मनुष्य जब ईश्वरोन्मुख हो जाता है अर्थात् अनन्य-भावसे ईश्वरकी शरणमें चला जाता है तब उसके करोड़ों जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। भगवान् तो सर्वसमर्थ हैं (**कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः**) और साथ ही परम दयालु भी हैं। अतः जीवके जन्म-जन्मान्तरके पापोंको नष्टकर उसे शुद्ध कर देना उनके लिये सर्वथा सम्भव है। जैसे नालेका मैला पानी गङ्गाजीमें मिलते ही पवित्र होकर शुद्ध गङ्गाजल बन जाता है, वैसे ही जीव ईश्वरकी शरणमें जाते ही पाप-तापसे रहित हो जाता है। भगवान् भी गङ्गाजीकी भाँति समदर्शी और उदार हैं। वे शरणागत जीवके दोष और अवगुणपर विचार नहीं करते हैं। उनके चरणोंके स्पर्शसे जीव सर्वथा शुद्ध और परम पवित्र हो जाता है—

**जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥**
(रा०च०मा० ७।१।६)

सारांश यह कि भगवान् शरणागत जीवके दोष-दुर्गुणपर विचार किये बिना उसे अपना लेते हैं और उसके सभी पाप-तापका शमन कर उसका उद्धार कर देते हैं। भगवान्‌की शरणमें जाकर पापी भी पुण्यात्मा बन जाता है। आवश्यकता इस बातकी है कि समर्पण पूर्णरूपसे और अनन्यभावसे हो तथा अहंकाररहित हो। भगवान् श्रीराम शरणागत विभीषणसे कहते हैं—

**जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥**
**तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥**
(रा०च०मा० ५।४८।२-३)

### भगवन्नाम-संकीर्तन

भगवान्‌के किसी भी नामका जप अथवा कीर्तन सबके लिये सुगम और सरल साधन है। कलियुगमें भजन-संकीर्तन ही आत्मकल्याणका एकमात्र साधन है। चैतन्य महाप्रभु आदि भक्तों तथा नारदादि ऋषियोंने भी नाम-संकीर्तनकी महिमाका बखान करते हुए इसे सर्वाधिक प्रभावकारी साधन माना है। 'नारदपुराण' में कहा गया है कि कलियुगमें कल्याणके लिये हरिनामके अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन है ही नहीं—

**हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।**
**कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥**

सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े

यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनकी पूजा-सेवासे जो फल मिलता था, वह कलियुगमें भगवन्नाम-कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो जाता है—

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(श्रीमद्भा० १२।३।५२)

भक्त-कवि तुलसीदासजीने राम-नामकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा है कि अच्छे भाव (प्रेम)-से या बुरे भाव (वैर)-से, क्रोधसे या आलस्यसे अर्थात् किसी भी तरह नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें (सर्वत्र) कल्याण होता है—

**भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥**

(रा०च०मा० १।२८।१)

गोस्वामीजी मानते हैं कि कलियुगमें न कर्म है, न भक्ति है और न ज्ञान ही है। राम-नामका जप ही मनुष्यके कल्याणका एकमात्र आधार है—

**नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥**

(रा०च०मा० १।२७।७)

श्रीराम-नामकी महिमाका वर्णन करनेमें वे स्वयंको असमर्थ मानते हुए यहाँतक कहते हैं कि उनके इष्टदेव श्रीरामजी भी नामके गुणगानमें समर्थ नहीं हैं—

**कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥**

(रा०च०मा० १।२६।८)

भगवान्‌के नामका जप अथवा कीर्तनसे अनेक जन्मोंके संचित पाप नष्ट हो जाते हैं। विवश होकर भी नामोच्चारण करनेसे जन्म-जन्मान्तरके पाप जल जाते हैं और जीवका कल्याण हो जाता है—

**बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥**

गोस्वामीजीने दोहावली (२२)-में यहाँतक कहा है कि नाम-जपसे जीवके मुक्त होनेमें क्षणभर भी देर नहीं होती है—

**बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।**
**होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥**

अनेक जन्मोंके पाप-संचयके कारण बिगड़ी हुई स्थिति आज और अभी (इसी क्षण) सुधर जायगी। यदि हम कुसमाज (कुसंगति)-का त्यागकर और रामका होकर अर्थात् रामकी शरणमें जाकर नामका जप करें। इस दोहेमें शरणागति और नाम-जपके अटूट सम्बन्धका संकेत है। नामीके शरणागत होकर नाम-जप करनेसे उसका तत्काल प्रभाव होता है। अतः पूर्ण सफलता और सद्यः लाभके लिये नाम-जपके साथ शरणागतिकी भावना आवश्यक है।

श्रीमद्भागवत महापुराणको भगवान् श्रीकृष्णका वाङ्मय-विग्रह माना जाता है। इस महापुराणका प्रारम्भ और समापन नाम-संकीर्तनकी महिमासे होता है। श्रीमद्भागवतकी कथा वस्तुतः द्वितीय स्कन्धसे प्रारम्भ होती है। महर्षि श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षित्‌को भागवतकी कथा सुनायी थी। कथाके प्रारम्भमें वे कहते हैं—राजर्षे! निर्गुणस्वरूप परमात्मामें मेरी पूर्ण निष्ठा है। फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया। महर्षि शुकदेवजीका भी अभिमत यही है कि सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी भगवान्‌का नाम-संकीर्तन करना आवश्यक है—

**एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।**
**योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥**

(श्रीमद्भा० २।१।११)

अर्थात् जो लोग लोक या परलोककी किसी भी वस्तुकी कामना रखते हैं या इसके विपरीत संसारमें दुःखका अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं और निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे भगवान्‌के नामका प्रेमसे संकीर्तन करें।

इस महापुराणके अन्तिम श्लोकमें पूरी कथाका समापन करते हुए निष्कर्षरूपमें कहा गया है—

**नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।**
**प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥**

(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

जिन भगवान्‌के नामका संकीर्तन सभी पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिनके चरणोंमें प्रणति सभी प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन्हीं परम तत्त्वस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

उपर्युक्त श्लोकमें 'प्रणाम' शब्द शरणागतिका द्योतक है। सारांश यह है कि भगवान्‌के शरणागत होकर उनके नामके संकीर्तनसे मनुष्य सभी प्रकारके पाप-ताप और दुःख-शोकसे सदाके लिये सहज ही मुक्त हो जाता है।

# साधकोंके प्रति—

## अभ्याससे बोध नहीं होता

( श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

हमलोगोंके भीतर एक बात जँची हुई है कि हरेक काम अभ्याससे होता है; अतः तत्त्वज्ञान भी अभ्याससे होगा। वास्तवमें तत्त्वज्ञान अभ्याससे नहीं होता। यह बड़ी मार्मिक और बड़ी उत्तम बात है। अभ्याससे एक नयी स्थिति बनती है, संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता। यह बहुत मनन करनेकी बात है। यह बात आपको जँचा देना मेरे हाथकी बात नहीं है। परंतु यह मेरी अनुभव की हुई बात है। अभ्याससे एक स्थिति बनती है, बोध नहीं होता। अभ्यासमें समय लगता है, जबकि परमात्मप्राप्ति तत्काल होनेवाली वस्तु है। जैसे, रस्सेके ऊपर चलना हो तो तत्काल नहीं चल सकते, उसके लिये अभ्यास करना ही पड़ेगा। अभ्यास किये बिना आप रस्सेपर नहीं चल सकते। परंतु दो और दो चार होते हैं—इसमें अभ्यास होता ही नहीं। तत्त्वज्ञानमें समयकी अपेक्षा है ही नहीं। परंतु जिसके भीतर अभ्यासके संस्कार हैं, वह इस बातको जल्दी नहीं समझ सकता।

अभ्यास और अनुभवमें बड़ा अन्तर है। अभ्याससे अनुभव नहीं होता, प्रत्युत एक नयी स्थिति बनती है। परमात्मतत्त्व स्थितिसे अतीत है। वह स्थितिसे नहीं मिलता—यह बहुत मार्मिक बात है। परंतु जिन्होंने ज्यादा लोगोंका सत्संग किया है, ज्यादा पुस्तकें पढ़ी हैं, उनको यह बात समझनेमें कठिनाई होती है। इस बातका मैं भुक्तभोगी हूँ! मैंने काफी पढ़ाई की है और वर्षोंतक अभ्यास किया है, इसलिये मेरेको इस बातका पता है। मैंने योगका अभ्यास किया है, वेदान्तका किया है, व्याकरणका किया है, काव्यका किया है, साहित्यका किया है, न्यायका किया है! वेदान्तमें आचार्यतककी परीक्षाएँ दी हैं। यद्यपि मैं अपनेको विशेष विद्वान् नहीं मानता, तथापि विद्याका अभ्यास मेरा किया हुआ है। इसलिये मेरे-जैसे व्यक्तिका जल्दी कल्याण नहीं हुआ! जिसके भीतर यह बात जँची हुई है कि अभ्याससे कल्याण होता है, उसका जल्दी कल्याण नहीं होगा।

कल्याणके लिये तीन बातें मुख्य हैं—मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है। इसमें अभ्यास क्या करेंगे? अभ्यास करेंगे तो वर्ष बीत जायँगे, बोध नहीं होगा। अभ्यास न करें तो अभी इसी क्षण बोध हो सकता है, चाहे अन्तःकरण कैसा ही क्यों न हो! आप मानें अथवा न मानें, मेरा कोई आग्रह नहीं है। परंतु यह मेरी देखी हुई, समझी हुई बात है कि अभ्याससे तत्त्वज्ञान नहीं होता। अभ्याससे आप विद्वान् बन जाओगे, पर तत्त्वज्ञान नहीं होगा। कितना ही अभ्यास करो, पर 'मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है और शरीर मेरे लिये है'—ये तीन बातें भीतरसे निकलती नहीं हैं। स्वरूपका बोध अभ्याससे सिद्ध होनेवाली चीज है ही नहीं। अभ्याससे नयी स्थिति बनती है, जबकि तत्त्व स्थितिसे अतीत है। स्थितिमें तत्त्व नहीं होता और तत्त्वमें स्थिति नहीं होती। उसको सहजावस्था कहते हैं, पर वास्तवमें वह अवस्था नहीं है। तत्त्व अवस्थासे अतीत है। अवस्थासे अतीत तत्त्व अभ्याससे नहीं मिलता, प्रत्युत तत्काल मिलता है। जो वस्तु जैसी है, उसे वैसी ही जाननेमें अभ्यास नहीं है। अभ्यासमें मन-बुद्धि-इन्द्रियोंका सहारा लेना पड़ेगा। तत्त्वबोधमें मन-बुद्धि-इन्द्रियोंकी जरूरत है ही नहीं। तत्त्वबोध वृक्षके फलकी तरह नहीं है, जिसमें समय लगता है। समय स्थिति बननेमें लगता है। जब अन्तःकरण शुद्ध होगा, मल-विक्षेप-आवरणदोष दूर होंगे, तब बोध होगा—यह प्रक्रिया मेरी की हुई है। वास्तवमें तत्त्वबोधके लिये अन्तःकरण-शुद्धिकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत अन्तःकरणसे सम्बन्ध-विच्छेदकी जरूरत है। केवल तत्त्वप्राप्तिकी चाहना जोरदार बढ़ जायगी तो चट प्राप्ति हो जायगी।

अपने भीतर अभ्यासके संस्कार पड़े हुए हैं, इसलिये प्रत्येक व्यक्तिके भीतरसे यह प्रश्न उठता है कि अब क्या करें? 'आपने कहा, हमने सुन लिया, अब क्या करें?' —क्या करें? यह बाकी रहेगा। अगर तत्काल प्राप्ति चाहते हो तो 'मैं शरीर नहीं हूँ'—यह बात मान लो। एक आदमीने दूसरेसे कहा कि दो और दो कितने होते हैं—इसका सही उत्तर दोगे तो मैं तुम्हें सौ रुपये दूँगा। दूसरेने कहा—चार होते हैं। पहला आदमी बोला कि नहीं होते। वह बार-बार कहे कि दो और दो चार होते हैं, पर पहला आदमी बार-बार यही कहे कि नहीं होते! अब उसको कोई कैसे समझाये? वह समझना ही नहीं चाहता।

आपको इतनी ही बात समझनी है कि मैं शरीर नहीं हूँ। आप 'घड़ी मेरी है'—यह तो कहते हैं, पर 'मैं घड़ी हूँ'—यह नहीं कहते। परंतु शरीरके विषयमें आप 'शरीर मेरा है'—

यह भी कहते हैं और 'मैं शरीर हूँ'—यह भी कहते हैं। 'मैं शरीर हूँ'—यह शरीरके साथ अभेदभावका सम्बन्ध है और 'शरीर मेरा है'—यह शरीरके साथ भेदभावका सम्बन्ध है। आपको कोई एक बात कहनी चाहिये, चाहे अभेदभावका सम्बन्ध कहो, चाहे भेदभावका सम्बन्ध कहो। एक ही शरीरको 'मैं' भी कहना और 'मेरा' भी कहना गलती है।

प्राणी चौरासी लाख योनियोंमें जाता है तो एक शरीरको छोड़ता है, तभी दूसरे शरीरमें जाता है। जब चौरासी लाख योनियोंके शरीर हमारे साथ नहीं रहे तो फिर यह शरीर हमारे साथ कैसे रहेगा? वे शरीर हमारे नहीं हुए तो यह शरीर हमारा कैसे हो जायगा? शरीर तो छूटेगा ही। अतः सीधी-सरल बात है कि शरीर मैं नहीं हूँ। इसमें अभ्यासका काम नहीं है।

जबतक अहंभाव (मैंपन) रहेगा, तबतक बोध नहीं होगा। अहम् मिटनेपर ही ब्राह्मीकी स्थिति होती है—

**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥**
**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।**

(गीता २।७१-७२)

अहंकार अपरा प्रकृति है और स्वयं परा प्रकृति है। परा प्रकृतिका सम्बन्ध परमात्माके साथ है, अपराके साथ नहीं। अहंकारको पकड़नेसे बोध कैसे होगा? बहुत वर्ष पहलेकी बात है। एक बार मैंने कहा कि **'अहं ब्रह्मास्मि'** (मैं ब्रह्म हूँ) कहना ठीक नहीं है; **'अहं ब्रह्मास्ति'** (मैं ब्रह्म है)—ऐसा कहना चाहिये। व्याकरणकी दृष्टिसे ऐसा कहना अशुद्ध है; क्योंकि **'अहम्'** के साथ **'अस्मि'** ही लगेगा, **'अस्ति'** नहीं। परंतु मेरे कहनेका तात्पर्य था कि **'अहम्'** साथमें रहेगा तो बोध नहीं होगा। **'अहं नास्मि, ब्रह्म अस्ति'** (मैं नहीं हूँ, ब्रह्म है)—ऐसा विभाग कर लो तो समझमें आ जायगा। **'अस्मि'** रहेगा तो अहंकार साथमें रहेगा ही। यह अहंकार अभ्याससे कभी छूटेगा नहीं, चाहे बीसों वर्ष अभ्यास कर लो। यह मार्मिक बात है।

यह सिद्धान्त है कि जो वस्तु मिलती है और बिछुड़ती है, वह अपनी नहीं होती। शरीर मिला है और बिछुड़ जायगा, फिर वह अपना कैसे हुआ? परमात्मा मिलने तथा बिछुड़नेवाले नहीं हैं। वे सदासे ही मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ते ही नहीं। उनका अनुभव नहीं होनेका दुःख नहीं है, इसीलिये देरी लग रही है। उनकी असली चाहना नहीं है। असली चाहना होगी तो तत्काल प्राप्ति हो जायगी। परमात्मप्राप्ति शरीरादि जड़ पदार्थोंके द्वारा नहीं होती, प्रत्युत इनके त्यागसे होती है। मन-बुद्धिकी सहायतासे बोध नहीं होता। प्रत्युत इनके त्यागसे बोध होता है।

योगदर्शन (१।१३)-में अभ्यासका लक्षण बताया है—

**तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।**

'किसी एक विषयमें स्थिति प्राप्त करनेके लिये बार-बार प्रयत्न करनेका नाम अभ्यास है।'

तत्त्वबोध किसी स्थितिका नाम नहीं है। जहाँ स्थिति होगी, वहाँ गति भी होगी—यह नियम है। तत्त्व स्थिति और गति—दोनोंसे अतीत है। तत्त्वमें न स्थिति है, न गति है; न स्थिरता है, न चञ्चलता है। जैसे भूख और प्यासके लिये अभ्यास नहीं करना पड़ता, ऐसे ही तत्त्वकी जिज्ञासाके लिये अभ्यास नहीं करना पड़ता। हमारी आदत अभ्यास करनेकी पड़ी हुई है, इसलिये अभ्यासकी बात ही हमें जँचती है।

अभ्यासका मैं खण्डन नहीं करता हूँ। अभ्यास करते-करते और नयी स्थिति होते-होते तत्त्वकी जिज्ञासा होकर उसकी प्राप्ति हो सकती है। परंतु यह बहुत लम्बा रास्ता है। कितने जन्म लगेंगे, इसका पता नहीं। अन्तमें भी जब अभ्यास छूटेगा अर्थात् जड़ता (शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि)-से हमारा सम्बन्ध छूटेगा, तब तत्त्वप्राप्ति होगी। तत्त्वप्राप्ति जड़ताके द्वारा नहीं होती, प्रत्युत जड़ताके त्यागसे होती है—यह सिद्धान्त है। जड़ताकी सहायताके बिना अभ्यास हो ही नहीं सकता। अतः अभ्यासके द्वारा जड़ताका त्याग नहीं हो सकता। जिसकी सहायतासे अभ्यास करेंगे, उसका त्याग अभ्याससे कैसे होगा? परंतु अभ्यासकी बात हरेक आदमीके भीतर जड़से बैठी हुई है, इसलिये बोध होनेमें कठिनता हो रही है। बोध होनेमें अभ्यासको हेतु माननेके कारण जल्दी बोध नहीं हो रहा है।

यद्यपि भगवन्नामका जप, कीर्तन, प्रार्थना भी अभ्यासके अन्तर्गत आते हैं, तथापि ये अभ्याससे तेज हैं। कारण कि अभ्यासमें अपना सहारा रहता है, पर जप, प्रार्थना आदिमें भगवान्‌का सहारा रहता है। 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' यह पुकार अभ्याससे तेज है। अभ्यासमें अपने उद्योगसे काम होता है, पर पुकारमें भगवान्‌की कृपासे काम होता है। आप अभी अभ्यासके राज्यमें ही बैठे हुए हैं, आपके संस्कार अभ्यासके हैं, इसलिये आप नाम जप, कीर्तन, प्रार्थनामें लग जाओ तो आपको बहुत लाभ होगा।
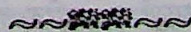
# सुख किसे प्राप्त होता है ?

( डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत )

एक बार एक शिष्यने अपने गुरुजीसे प्रश्न किया—

'सुख किसे प्राप्त होता है ?'

'जिसका हृदय शान्त है।'

'हृदय किसका शान्त है ?'

'जिसका मन चञ्चल नहीं।'

'मन किसका चञ्चल नहीं ?'

'जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं।'

'अभिलाषा किसे नहीं ?'

'जिसकी किसी वस्तुमें आसक्ति नहीं।'

'आसक्ति किसे नहीं ?'

गुरुने शान्त स्निग्धमुद्रामें कहा—जिसकी बुद्धिमें मोह नहीं है।

मोह दूर करनेका एक ही उपाय है और वह यह कि वास्तविकताका बोध हो जाय। वास्तविकताका बोध होते ही यह विश्वास दृढ़ हुए बिना न रहेगा कि जितने भी सांसारिक सम्बन्ध हैं, सब स्वार्थकेन्द्रित हैं। मेरा असली साथी तो केवल वह है जिसे इनके लिये मैं भुला बैठा हूँ।

जब प्रभुकृपा होती है तभी इस वास्तविकताका बोध होता है। प्रभुकृपाके लिये आध्यात्मिक साधना करनी पड़ती है। आध्यात्मिक साधनासे आत्मबल मिलता है, उस सत्यका दर्शन होता है जो ज्ञानकी पराकाष्ठा है। इसीसे दैवी दयाका बोध होता है।

आध्यात्मिक साधनोंसे द्रवीभूत होकर चित्तकी वृत्तियोंका ईश्वरकी ओर प्रवाह होने लगता है और यह प्रवाह ही भक्ति है। भक्ति शब्दकी व्युत्पत्ति **'भज्'** धातुमें **'क्तिन्'** प्रत्ययके योगसे हुई है। **'भज्'** धातुका अर्थ है सेवा करना। अतः इसमें सेवासे सम्बद्ध श्रद्धा, अनुरक्ति, समर्पण आदि सभी भाव आ जाते हैं। इन सभी भावोंके मूलमें प्रेम किसी-न-किसी रूपमें विद्यमान रहता है। इसीलिये प्रेमको भक्तिका प्रेरक अथवा निष्पादक तत्त्व कहा गया है। महर्षि शाण्डिल्यने इसे ईश्वरके प्रति परानुरक्ति कहा है—**'सा परानुरक्तिरीश्वरे'**। नारदजी इस भक्तिको परमप्रेमरूपा बतलाते हैं—**'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा'** (नारदभक्तिसूत्र २)। श्रीमद्भागवतमें परानुरक्तिका तात्पर्य निर्हेतुक, निष्काम तथा निरन्तर प्रेम बतलाया गया है—**'अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे'** (३। २९। १२) ऋग्वेदसंहिता (१। ७१। ७)-में कहा गया है—**'अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्तयह्वीः'** जैसे गङ्गा आदि नदियाँ समुद्रकी ओर दौड़ती हुई उसमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही भगवद्भक्तोंके मनकी सभी वृत्तियाँ अनन्त दिव्य गुण-कर्मवान् परमेश्वरकी ओर जाती हुई, तदाकार होती हुई उसमें विलीन हो जाती हैं। श्रीमद्भागवत (३। २९। ११)-में यही बात इस रूपमें कही गयी है—

**मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।**
**मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥**

अर्थात् सर्वव्यापी परमात्माके गुणश्रवणमात्रसे भक्तके चित्तकी गति भगवान्‌की ओर तैलधारावत् अविच्छिन्न रूपसे उसी प्रकार प्रवाहित होने लगती है, जैसे गङ्गाजीका जल समुद्रकी ओर प्रवाहित होता है। यही प्रणय है, प्रणति है, प्रेम है, प्रीति है। समस्त संतापोंका निवारण करके परमानन्द प्रदान करनेवाली है यह प्रीति।

कर्म, ज्ञान और योगसे भी यह श्रेष्ठ है; क्योंकि भक्ति इन सभीका फल है—**'सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा॥ फलरूपत्वात्॥'** (नारदभक्तिसूत्र २५-२६)। तुलसीदासजी कहते हैं कि *'जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी॥'* (मानस ७। १२६। ७) अन्यत्र वे लिखते हैं—*'सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥'* (मानस ३। १६। ३)। भक्तिके अन्तर्गत ईश्वरकी महत्ता स्वीकृत है। साथ ही, भक्तका समर्पणभाव भी निहित है।

भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—वैधी तथा रागानुगा। वैधी भक्तिमें विधि-विधानोंका विशेष महत्त्व है। रागानुगा भक्ति सहज, सरल तथा सुलभ है। लोकमें भगवद्गुणश्रवण, कीर्तन तथा वर्णन करनेसे यह प्राप्त होती है—**'लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात्'** (नारदभक्तिसूत्र ३७)। तुलसीदासजीके अनुसार भगवच्चर्चा ही भवरोगकी महौषधि है—*'हरन घोर त्रय सूल'* (मानस ७। १२४)। भगवान् श्रीरामके नाममें ऐसी शक्ति है कि चाहे जैसे भी उसका उच्चारण करो, कल्याण-ही-कल्याण है—*'बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥ सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥'* (मानस १। ११९। ३-४)। बरवै रामायण (संख्या ५८)-में उल्लेख है कि भगवान्‌का नाम पाप-ताप-दाहक, दुःख-दारिद्र्य-विनाशक तथा सकलसुमङ्गलदायक है—*'दोष दरित दुःख दारिद दाहक नाम। सकल सुमंगल दायक*

*तुलसी राम'॥*

नाममें तो इतनी शक्ति है कि उसके स्मरणमात्रसे ही भवसिन्धु सूख जाता है—*'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं'* (मानस १।२५।४)। कलियुगरूपी कालनेमिके लिये तो वह समर्थ हनुमान् ही है।

विश्रामसागरके रचयिता बाबा रघुनाथदासजीके अनुसार राम-नाम ऐसा मुक्ताहल है, जिसका आलोक त्रिभुवनमें व्याप्त है—*'राम नाम मुक्ता हल भाई। जासु आब त्रिभुवन महँ छाई॥'* जैसे एक जड़को सींचनेसे डाल-पत्ते सभी हरे हो जाते हैं, उसी प्रकार राम-नामके ध्यानसे सम्पूर्ण सृष्टिका ध्यान हो जाता है। राम-नामके प्रथम रकारसे नारायणका रूप, आकारसे महाविष्णु तथा मकारसे महाशम्भु हुए। राम-नामके भीतर ब्रह्म, जीव और तीनों लोक हैं। क्षितिज, बीज, नक्षत्र, आकाश, नगर, ग्रह आदि सब राम-नाममें ही अनुस्यूत हैं—

नारायणको रूप करि, जो है प्रथम रकार।
महाविष्णु आकार ते महाशंभु माकार॥
राम नामके भीतरै, ब्रह्म जीव त्रैलोक।
ज्यों क्षिति बीज नक्षत्र नभ, नगर माहिं गृह थोक॥
राम नामके ध्यानमें सृष्टि ध्यान होइ जात।
जिमि सींचे यक मूल के डार पात हरियात॥
(विश्रामसागर)

नामी नामके अधीन है। जब जीवके साथ भगवान्का बँटवारा हुआ, भगवान्ने कहा—'तुम हमारे सखा और हम तुम्हारे सखा'। जीवने कहा—'केवल सखा कहनेसे बात नहीं बनेगी, सब कुछ तो आपने अपने पास रखा है। कुछ हमें भी तो दो!' इसपर भगवान्ने कहा—हमारे पास दो ही तो चीजें हैं—एक नाम और दूसरा रूप। रूप हमारे पास रहने दो। इस प्रकार जीव और राममें आधा-आधा बँटवारा हो गया। इसपर भी भगवान्ने सोचा कि मैं तो बलवान् हूँ, जीव निर्बल है, इसलिये इसे थोड़ा और बल देना चाहिये। उन्होंने कहा—लो, जीव! मैं अपने रूपको नामके अधीन कर देता हूँ। जब तुम मेरा नाम लेकर पुकारोगे तो मैं आ जाऊँगा। इस प्रकार भगवान् तो नामके अधीन हैं। जब कोई उन्हें पुकारता है तो वे दौड़े चले आते हैं। वे स्मरणमें ही रमण, अनुगमन तथा पूर्ण चैतन्यभावसे विश्राम करते हैं। वे स्वयंमें एक रस हैं—रामानन्द तथा परमानन्दरस।

शास्त्रोंमें भगवान्से भी अधिक उनके राम-नामकी महिमा प्रदर्शित की गयी है। भगवान् शङ्कर 'स्कन्दपुराण'के नागरखण्डमें देवी पार्वतीजीको राम-नामकी महिमा बताते हुए कहते हैं*—

'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपनेपर समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, खड़े हुए अथवा सोते (जिस किसी भी समय) जो मनुष्य राम-नामका कीर्तन करता है, वह यहाँसे कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् श्रीहरिका पार्षद बनता है। 'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र शतकोटि मन्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व रखता है। राम-नामसे बढ़कर जगत्में जप करनेयोग्य कुछ भी नहीं है। जिन्होंने राम-नामका आश्रय लिया है, उन्हें यमयातना नहीं भोगनी पड़ती। जो मनुष्य अन्तरात्मस्वरूपसे राम-नामका उच्चारण करता है, वह स्थावर, जंगम सभी भूतप्राणियोंमें रमण करता है। 'राम' यह मन्त्रराज है, यह भय तथा व्याधिका विनाश करनेवाला है। 'रामचन्द्र', 'राम', 'राम' इस प्रकार उच्चारण करनेपर यह दो अक्षरोंका मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है। गुणोंकी खान इस राम-नामका देवतालोग भी भलीभाँति गान करते हैं। अतएव हे देवेश्वरि! तुम भी सदा राम-नामका उच्चारण किया करो। जो राम-नामका जप करता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है।

तुलसीदासजीकी अभिव्यक्ति है—*'ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि'* (मानस १।२५)। वह ऐसा कल्पतरु है, जो *'कलि कल्यान निवासु'* है। अपने इस अभिमतकी सिद्धिमें वे विभिन्न दृष्टान्तोंके द्वारा नामको ब्रह्मसे श्रेष्ठ प्रमाणित करते हुए लिखते हैं—*राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥ भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥ निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥* (मानस १।२७)

---

* रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः। गच्छंस्तिष्ठञ्शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्। रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः॥
न रामादधिकं किञ्चित् पठनं जगतीतले। रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः। रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि। देवा अपि प्रगायन्ति रामनामगुणाकरम्॥
तस्मात् त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद। रामनाम जपेद् यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

वे तो यहाँतक कहते हैं कि राम भी नामके गुणोंका बखान नहीं कर सकते—*'रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥'*

नाम-जपमें श्रद्धा, प्रीति तथा तन्मयता नितान्त आवश्यक है। **'भजतां प्रीतिपूर्वकम्'**, *'सादर सुमिरन जे नर करहीं।'*, *'साधक नाम जपहिं लय लाएँ'*—इन वाक्योंमें प्रीति, लय तथा सादर—ये शब्द सिद्ध कर रहे हैं कि श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक मन लगाकर नाम-जप करनेपर ही सिद्धिकी प्राप्ति होती है। पातञ्जलियोगसूत्रके समाधिपादके २८वें सूत्र **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'**-में भी स्पष्ट कहा गया है कि भगवन्नाम-जपके साथ उसके अर्थकी भावना भी करनी चाहिये।

भगवन्नाम-स्मरणकी यह तीसरी अवस्था है। इसमें जापक इष्टके स्वरूपका ध्यान करते हुए जप करता है। तुलसीदासजीकी ये उक्तियाँ इसी अवस्थाको व्याख्यायित करती हैं—*'मज्जहिं सज्जन बृंद बहु पावन सरजू नीर। जपहिं राम धरि ध्यान उर सुंदर स्याम सरीर॥'* अथवा *'प्रीति प्रतीति सुदीति सों राम राम जपु राम। तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम॥'*

इसके पूर्वकी स्थितियाँ हैं प्रवेशिक अथवा प्रारम्भिक, जिसमें 'येन केन प्रकारेण'—भगवान्‌का नाम लेना होता है। *'भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'* *'बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥'* *'राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥'* आदि कथानक जपकी प्रारम्भिक अवस्थाका संकेत करते हैं। द्वितीय अवस्थामें निषेधपर बल रहता है—*'भजिअ राम सब काम बिहाई'*, *'अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल'*, *'करि बिचार, तजि बिकार, भजु उदार रामचंद्र'* आदि कथन इसी दूसरी अवस्थाके परिचायक हैं।

सर्वोत्कृष्ट अवस्था चतुर्थावस्था है। यह जापककी परिपूर्ण स्थिति है। *'जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहु पासा॥'* अथवा *'भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग। कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥'*—इन पंक्तियोंमें भरतका जापक रूप अपने पूर्ण वैभवके साथ मुखर है। भगवन्नाम-स्मरणकी यही परिपूर्ण अवस्था है।

ये चारों अवस्थाएँ उत्तरोत्तर उत्कर्षकी हैं। सच तो यह है कि भगवान्‌के नामका स्मरण प्रत्येक दशामें फलदायी है। महर्षि अत्रि अपनी स्मृतिके अन्तिम नवें अध्यायमें कहते हैं कि यदि विद्वेषभावसे वैरपूर्वक भी दमघोषके पुत्र शिशुपालकी तरह भगवान्‌का स्मरण किया जाय तो उद्धार होनेमें कोई संदेह नहीं, फिर यदि तत्परायण होकर अनन्य भावसे भगवदाश्रय ग्रहण कर लिया जाय तो परम कल्याणमें क्या संदेह—

विद्वेषादपि गोविन्दं दमघोषात्मजः स्मरन्।
शिशुपालो गतः स्वर्गं किं पुनस्तत्परायणः॥

वास्तवमें नाम-जपका सुख सात्त्विक सुख है। सात्त्विक सुख प्रारम्भमें तो विष-सा अरुचिकर ही होता है, परिणाममें ही हितकर होता है। अभ्यासद्वारा ही इसमें रमण अर्थात् रसास्वादन होता है, ऐसा गीता (१८। ३६-३७)-में कहा गया है—**'अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति॥ यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्'**।

इसलिये प्रारम्भमें यदि नाम-जपमें मन न लगे तो घबराना नहीं चाहिये। मनका निग्रह धीरे-धीरे होता है, दीर्घकालीन अभ्याससे उसमें स्थिरता आती है। आलम्बनके प्रति प्रीति इसमें विशेषरूपसे सहायक सिद्ध होती है।

*'करत-करत अभ्यास तें जड़ मति होत सुजान'* का उद्घोष करनेवाले तुलसीदासजीकी भगवत्प्रीतिका ही यह चरमोत्कर्ष है कि उन्हें अन्धा होना स्वीकार है, किंतु वे ऐसी आँखें नहीं चाहते जो रामका यश सुनते ही प्रेमाश्रु नहीं बहातीं। श्रीरामके स्मरणसे जो हृदय पिघलता नहीं, तन रोमाञ्चित नहीं होता, वह काटने-जलाने योग्य है—*'हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम। द्रवहिं स्त्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥'*

स्मृतिकारका कथन है कि जो क्षण-मुहूर्त भगवच्चिन्तनके बिना व्यतीत हो, वह हानि, भ्रान्ति तथा विपत्ति-दायक है—

**यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते।**
**सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा भ्रान्तिः सा व्यतिक्रिया॥**

इसीलिये श्रीवेदव्यासजी कहते हैं—

**स्मर्तव्यः सततं विष्णुः विस्मर्तव्यो न जातुचित्।**
**सर्वे विधिनिषेधाद्या एतयोरेव किङ्कराः॥**

अर्थात् भगवान्‌का स्मरण सदा-सर्वदा करना चाहिये, भगवद्विस्मरण कभी नहीं हो, समस्त विधि-निषेध इन्हींके दास हैं। इसकी व्याख्या गोस्वामीजीने विनय-पत्रिका (६७)-में इस प्रकार की है—

**राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे।**
**रामको बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥**

भक्तकी यह जीवनचर्या यदि हमारी जीवनचर्या बन जाय तो उद्धार हुए बिना न रहे—

सुनु कान दिएँ, नितु नेमु लिएँ रघुनाथहिके गुनगाथहि रे।
सुखमंदिर सुंदर रूपु सदा उर आनि धरें धनु-भाथहि रे॥
रसना निसि-बासर सादर सों तुलसी! जपु जानकीनाथहि रे।
कर संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर, कुपंथ कुसाथहि रे॥

(कवितावली ७। २९)

निष्कर्ष यह कि—

*'रामनाम सार है असार सृष्टि हीर हेम'।*

महर्षि वेदव्यासजीका यह डिण्डिम-घोष कभी विस्मृत न होने दें—

**हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।**
**कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥**

साथ ही मनको प्रबुद्ध भी करते रहे इन शब्दोंमें—

**राम ही राम रटे निशि याम न काम से काम रखे मन मेरे।**
**ध्यान सरोवर की बन मीन अदीन रहे न झखे मन मेरे॥**
**अन्तर लोचनसे दुख मोचन रूप अरूप लखे मन मेरे।**
**छोड़ जँजाल भरा दुख जाल सुधा नवधा की चखे मन मेरे॥**

# मन ईश्वरमें लगाओ, सुख-शान्ति पाओ

( श्रीनृसिंहदेवजी अरोड़ा )

इस संसारमें रहते हुए सब काम करना चाहिये, परंतु मन ईश्वरमें रखना चाहिये।

माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सबके साथ रहते हुए सबकी सेवा करनी चाहिये, परंतु पारमार्थिक दृष्टिसे मनमें इस बातको, इस ज्ञानको दृढ़ रखना चाहिये कि ये हमारे नहीं हैं, भगवान्‌के ही हैं।

किसी धनीके घरकी दासी उनके घरका सारा काम करती है, परंतु उसका मन अपने गाँवके घरपर लगा रहता है। मालिकके लड़कोंका वह अपने पुत्रोंकी तरह लालन-पालन करती है, उन्हें 'मेरे मुन्ना, मेरे राजा' कहती है, पर मन-ही-मन खूब जानती है कि ये मेरे नहीं हैं। जैसे कछुआ रहता तो पानीमें है पर उसका मन रहता है किनारेपर, जहाँ उसके अण्डे रखे रहते हैं। इसी प्रकार संसारका काम करो, पर मन ईश्वरमें रखो। बिना भगवद्भक्ति प्राप्त किये यदि संसारमें रहोगे तो दिनों-दिन उलझनोंमें फँसते जाओगे और यहाँतक फँस जाओगे कि फिर पिण्ड छुड़ाना उसी प्रकार मुश्किल हो जायगा, जिस प्रकार मकड़ी अपने ही बुने हुए जालमें फँसी रहती है। रोग, शोक, ताप, मोह आदिके कारण अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना करोगे, आसक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ेगी।

जैसे हाथोंमें तेल न लगाकर कटहल काटनेसे हाथोंमें उसका दूध चिपक जाता है, ऐसे ही, भगवद्भक्तिरूपी तेल हाथोंमें लगाकर संसाररूपी कटहलके लिये हाथ बढ़ाओ। यदि भक्ति पानेकी इच्छा हो तो संसारमें मन कम लगाओ और धीरे-धीरे मनको पूर्णरूपसे भगवान्‌में लगा दो, फिर संसारका काम तो अनायास होता रहेगा और धीरे-धीरे आसक्ति भी छूट जायगी। ईश्वरका चिन्तन करनेसे यह मन भक्ति, वैराग्य और ज्ञानका अधिकारी होता है। इस मनको यदि संसारमें डालकर रखोगे तो नीचेकी ओर ही ले जायगा। इस असार संसारमें कामिनी-काञ्चनके सिवा और है ही क्या?

संसार जल है और मन मानो दूध। यदि दूध पानीमें डाल देंगे तो वह (दूध) पानीमें मिल जायगा, पर उसी दूधको भजन या नाम-जपरूपी मक्खन बनाकर यदि पानीमें छोड़ोगे तो मक्खन पानीमें तैरता रहेगा। इस प्रकार साधनाद्वारा ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके यदि संसारमें रहोगे भी तो संसारसे निर्लिप्त रहोगे। विषय-भोगोंका रस फीका लगने लगेगा और उनके प्रति वितृष्णा और घृणाका भाव पैदा हो जायगा। साथ-ही-साथ यह विचार भी खूब दृढ़ करना होगा कि कामिनी और काञ्चन अनित्य हैं, एकमात्र ईश्वर ही नित्य है। रुपयेसे क्या मिलता है? रोटी, कपड़ा और मकान आदि बस यहींतक। रुपयेसे ईश्वर नहीं मिलता। इसलिये केवल रुपया ही जीवनका लक्ष्य नहीं हो सकता, जीवनका लक्ष्य तो प्रभु-प्राप्ति है। इसको सद्विचार कहते हैं।

अतः उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय ईश्वरको याद करते हुए जीवन जीना चाहिये। मनको ईश्वरमें लगाकर देखो, सुखद आनन्दकी अनुभूति होगी।

श्रीरमण महर्षिका कितना सुन्दर कथन है—'जबतक मनुष्यका हृदय भगवान्‌में रहता है तबतक वह संसाररूप भव-सागरमें नहीं डूब सकता।'

# साधक-प्राण-संजीवनी

## [ दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते ]

## साधुमें साधुता

( गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज )

[ गताङ्क पृ०-सं० ८६७ से आगे ]

मरि जाय, परंतु प्राण रहते पाप न बनै।

गुरुजनन कौ सामनौं न करि बैठै, सह ले, कछु हो, पर आँख न उठै।

क्रोध न करै, जो जाय सो जाय, रहै सो रहै, पर क्रोध न करै।

अपमान सह ले, किंतु दूसरे कौ अपमान न करै।

स्त्री सौं सम्पर्क कैसें हूँ न बनै?

अपनी ओर सौं अखण्ड ब्रह्मचर्य कौ पालन करै **( रोग-विवशताकी बात अलग है।)**।

सत्यता कौ पूरौ पालन बनै।

कटुता, रूक्षता तथा ईर्ष्या—ये न हौन पावैं।

दम्भ, कपट, छल छू न जाय।

हमारी तौ दृढ़ धारणा है कि यदि एक ही जीवनमें पार हौनौं चाहै तौ—

**सरल उपाय है—२४ घंटा केवल इनके ताँईं**—एक हूँ क्षण व्यर्थ न जाय। खाय लेय, पीय लेय, सोय लेय, किंतु अन्य समय केवल इनके ही ताँईं। जो विचार बार-बार सुन्यौ जाय, कह्यौ जाय, पढ़्यौ जाय, वह कालान्तरमें स्वभाव बनि जाय है। यासौं एक नियम बनि जाय। **प्रतिज्ञा करि लेउ कि—**

—जो बोलैं इनके ताँईं।

—जो सुनैं इनके ताँईं।

—जो सोचै इनके ताँईं।

—जो छूबैं इनके ताँईं।

—जो करैं इनके ताँईं। केवल इनके ताँईं ही, व्यर्थ नहीं। संसारके विषय राग-द्वेष, पर-चर्चा, पर-निन्दा आदि प्रतिज्ञापूर्वक नहीं। अध्यात्म-पथके पथिक कौ परम कर्तव्य है कि वह सदैव ख्याल राखै कि हम या समय का करि रहे हैं? कौनके ताँईं करि रहे हैं? अपने ताँईं या इनके ताँईं?

**श्रीहनुमान्‌जीने लङ्का जलायी**—कौनके ताँईं? इनके ताँईं। जो होय इनके ताँईं ही होय।

**प्रश्न**—महत्ता कार्यकी है या लक्ष्यकी?

**उत्तर**—वास्तवमें महत्ता तौ लक्ष्यकी है। लक्ष्य यदि दृढ़ होय तौ कार्य तौ स्वत: हौयगौ ही। प्रधान तौ लक्ष्य ही है। ये लक्ष्य ही पुनर्जन्म कौ कारण बन्यौ भयौ है। यही पीछें वासना बनि जाय है।

मन्दिरमें दो साधुन कूँ परस्पर लड़ते देखिकैं निज जनन सौं बौले कि ये दोऊ यहाँ आये ब्रजवास करिवे और आपसमें ऐसे लड़े कि यदि एक-दूसरेके पास आय जाते तौ एक-दूसरे कूँ चबाय जाते। याकूँ देखि कैं हमसौं शयनके समय कही कि लिख लीजौं। भजन-साधन भले ही कम बनै, पर यह न हौन पावै। सावधान! क्रोध-विरोध कूँ अवसर न दें।

सबरी त्रुटि एक साथ अध्यात्ममें ही प्रवेश करि गयी है।

**—सत्यता, श्रद्धा, तत्परता**—इनमें सौं एक हूँ नहीं हैं।

**आजके दिन तीन बात पकरनी है—**

—२४ घंटा केवल इनके ताँईं अर्थात् अपनौं सबरौ समय केवल इनके ताँईं।

**—जीभ चलै**—श्रीभगवत्-नामके ताँईं, पाठके ताँईं, सेवाके ताँईं।

**—श्रवण**—सत्संग सुनिवेके ताँईं, पाठ सुनिवेके ताँईं अर्थात् सुननौं-बोलनौं सब इनके ताँईं ही होय।

**दो बात कबहूँ न भूलैं—**

—कृपा कौ आभार।

—कृपाकी सँभार।

एक बात जीवनभर ध्यान रहे, सदैवके ताँईं? बड़े

गुरुजन कछु बात कह जायँ तौ बाकूँ मान लेय। नहीं तौ परिणाम ऐसौ होय है, जैसौ एक सतपथ बिमुख कौ होय है। गृहस्थ-संसारी लोग यदि कछु न करि पावें तौ सम्भव है ईश्वर-ध्यान न दें, किंतु जिनकूँ खायवे, पीयवे, रहवे, पहिरवेकी व्यवस्था प्रभुने करी है; फिर मिल जायँ कहूँ श्रीसद्गुरु और तब वह चूकै तौ का ईश्वर बाकूँ क्षमा करि देगौ? सावधान! अब चूक न बनै। अवसर कूँ पूर्णरूप सौं सँभारि लेउ।

जो जहाँ है, वहाँ कौ कर्तव्य-पालन पूरौ करि लेय तौ आगे कौ मार्ग स्वतः सुलभ बनि जायगौ। पर यह बनि नहीं पावै।

कहूँ प्रेमिनकी चर्चा होय तौ मन ललचै कि मैं हूँ ऐसौ बनूँ। यही है सबकौ सार। याहीके ताँईं पूरौ प्रयत्न। अबतक जो संकल्प बने वही पायौ। अब संकल्प बनैं केवल इनके ताँईं ही।

**राग-द्वेष सौं बचिवे कौ एक ही सर्वोत्तम उपाय है—** सतत अपने साधनमें जुट्यौ रहै।

जीवन केवल इनके ताँईं बनै। इनके रिझायवेके ताँईं बनै और ठीक बनै। सत्यता सौं बनै। दम्भ न हो। संसार कूँ धोखौ न दे तौ एक ही जीवनमें बेड़ा पार।

साधन कियौ और ऊँची स्फुरणा न उठी तौ जान लेय कि साधन ठीक नहीं बन्यौ। कहूँ त्रुटि है, साधन ही आगे कौ मार्ग सुझाय देय है।

प्रेम-देवमें एक बड़ी गम्भीर बात है कि प्रेमके अतिरिक्त और कोई कामना न उठन पावै। प्रेम-पथमें हठ नहीं है। यहाँतक कि इनकूँ बुलायवेकी हूँ कामना न करै। अनुत्ताप होय केवल एक, हाय! हाय! इनने कितनी कृपा करी, किंतु मैं कछु नहीं करि पायौ। जहाँ हृदयमें संकीर्णता है, वहाँ श्रीभगवान् कौ कहा काम? वहाँ तौ कलियुग कौ ही निवास होयगौ।

**श्रीमद्भागवतजीके एक श्लोक कौ भाव है—**तुम्हारौ मन ही कह देय है कि तुम कहाँ सौं आये हो और कहाँ जाओगे। यह अपने मन सौं ही पूछौ।

पतिव्रता यदि भूल सौं हूँ घूँघटकी ओट सौं हूँ पर-पुरुष कूँ देखि लेय तौ पातिव्रत नष्ट है जाय। ऐसैं ही साधक कूँ चहिए कि भूल सौं हूँ मायाकी याद न बनै, विषय-विकारनमें चित्त न जाय। यही है अध्यात्म। सब कछु श्रीभगवान्के ताँईं। जबतक ऐसौ नहीं बनैगौ, तबतक उपासना करते भये हूँ कल्प-के-कल्प बीति जायँगे।

**ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं।**
**ऐसे जन जग मैं रहैं, हरि को भूलत नाहिं॥**

निरन्तर अविछिन्न तैल-धारावत् वृत्ति इनमें ही लगी रहै, यही उपासना है। यही करनौं परैगौ। यह जो सत्संग है न, समय बितायवेके ताँईं नहीं है। कुछ लैवेके ताँईं है। '*सतसंगति संसृति कर अंता* (रा०च०मा० ७। ४५। ६)।' इतनौं महत्त्व है याकौ। जाने पूरे मन सौं भजन कियौ है, वाही कूँ भजन न बनिवे पै दुःख होय है। श्रीकबीरदासजी सत्यके ग्राहक रहे। वे ऊपरी बातनमें संतोष नहीं मानते।

**उनकौ सिद्धान्त है—**जो कुछ होय इनके ताँईं और इनके समक्ष ही होय। आराधना ही जीवन बनि जाय, यह परम-कर्तव्य है। यह तब ही बनेगौ, जब जीवन पवित्रतम होयगौ। यदि जीवन पवित्रतम नहीं है तौ यह बनि नहीं पावैगौ।

**प्रश्न—**व्यर्थ चिन्तन न होय, याकौ कोई उपाय है?

**उत्तर—**दौ बातें हैं—

—अपनौं साधन इतनौं बढ़ाय देय कि समय ही न मिलै। या साधनके पश्चात् निरन्तर साधनकी ही चिन्ता लगी रहै।

—इनके प्रेममें डूबि जाय। तौ यह तौ अपने बसकी बात ही नहीं। करिवेकी बात है पहली।

**तीन बातें हैं—**साधन, साधनोपयोगी जीवन और साध्य। इनमें साधनोपयोगी जीवन आवश्यक है।

**या पथमें दो बातनकी बड़ी सावधानी राखै—**जो इनकी ओर चलि रह्यौ होय, बाकी तन-मन-धन सौं सहायता करि दे।

इनकी ओर लग्यौ भयौ होय, बाकूँ इनसौं अलग करिवेमें निमित्त न बनैं। **[ क्रमशः ]**

# साधक-प्राण-संजीवनी

## [ दीवानोंका यह अगम पंथ संसारी समझ नहीं पाते ]

## साधुमें साधुता

( गोलोकवासी संत-प्रवर पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज )

[ गताङ्क पृ०-सं० ८६७ से आगे ]

मरि जाय, परंतु प्राण रहते पाप न बनै।

गुरुजनन कौ सामनौं न करि बैठै, सह ले, कछु हो, पर आँख न उठै।

क्रोध न करै, जो जाय सो जाय, रहै सो रहै, पर क्रोध न करै।

अपमान सह ले, किंतु दूसरे कौ अपमान न करै।

स्त्री सौं सम्पर्क कैसें हूँ न बनै?

अपनी ओर सौं अखण्ड ब्रह्मचर्य कौ पालन करै **( रोग-विवशताकी बात अलग है। )**।

सत्यता कौ पूरौ पालन बनै।

कटुता, रूक्षता तथा ईर्ष्या—ये न हौन पावैं।

दम्भ, कपट, छल छू न जाय।

हमारी तौ दृढ़ धारणा है कि यदि एक ही जीवनमें पार हौनौं चाहै तौ—

**सरल उपाय है—२४ घंटा केवल इनके ताँईं**—एक हूँ क्षण व्यर्थ न जाय। खाय लेय, पीय लेय, सोय लेय, किंतु अन्य समय केवल इनके ही ताँईं। जो विचार बार-बार सुन्यौ जाय, कह्यौ जाय, पढ्यौ जाय, वह कालान्तरमें स्वभाव बनि जाय है। यासौं एक नियम बनि जाय। **प्रतिज्ञा करि लेउ कि—**

—जो बोलैं इनके ताँईं।

—जो सुनैं इनके ताँईं।

—जो सोचै इनके ताँईं।

—जो छूबैं इनके ताँईं।

—जो करैं इनके ताँईं। केवल इनके ताँईं ही, व्यर्थ नहीं। संसारके विषय राग-द्वेष, पर-चर्चा, पर-निन्दा आदि प्रतिज्ञापूर्वक नहीं। अध्यात्म-पथके पथिक कौ परम कर्तव्य है कि वह सदैव ख्याल राखै कि हम या समय का करि रहे हैं? कौनके ताँईं करि रहे हैं? अपने ताँईं या इनके ताँईं?

श्रीहनुमान्‌जीने लङ्का जलायी—कौनके ताँईं? इनके ताँईं। जो होय इनके ताँईं ही होय।

**प्रश्न**—महत्ता कार्यकी है या लक्ष्यकी?

**उत्तर**—वास्तवमें महत्ता तौ लक्ष्यकी है। लक्ष्य यदि दृढ़ होय तौ कार्य तौ स्वत: हौयगौ ही। प्रधान तौ लक्ष्य ही है। ये लक्ष्य ही पुनर्जन्म कौ कारण बन्यौ भयौ है। यही पीछें वासना बनि जाय है।

मन्दिरमें दो साधुन कूँ परस्पर लड़ते देखिकैं निज जनन सौं बौले कि ये दोऊ यहाँ आये ब्रजवास करिवे और आपसमें ऐसे लड़े कि यदि एक-दूसरेके पास आय जाते तौ एक-दूसरे कूँ चबाय जाते। याकूँ देखि कैं हमसौं शयनके समय कही कि लिख लीजौं। भजन-साधन भले ही कम बनै, पर यह न हौन पावै। सावधान! क्रोध-विरोध कूँ अवसर न दें।

सबरी त्रुटि एक साथ अध्यात्ममें ही प्रवेश करि गयी है।

**—सत्यता, श्रद्धा, तत्परता**—इनमें सौं एक हूँ नहीं हैं।

**आजके दिन तीन बात पकरनी है—**

—२४ घंटा केवल इनके ताँईं अर्थात् अपनौं सबरौ समय केवल इनके ताँईं।

**—जीभ चलै**—श्रीभगवत्-नामके ताँईं, पाठके ताँईं, सेवाके ताँईं।

**—श्रवण**—सत्संग सुनिवेके ताँईं, पाठ सुनिवेके ताँईं अर्थात् सुननौं-बोलनौं सब इनके ताँईं ही होय।

**दो बात कबहूँ न भूलैं—**

—कृपा कौ आभार।

—कृपाकी सँभार।

एक बात जीवनभर ध्यान रहै, सदैवके ताँईं? बड़े

गुरुजन कछु बात कह जायँ तौ बाकूँ मान लेय। नहीं तौ परिणाम ऐसौ होय है, जैसौ एक सतपथ बिमुख कौ होय है। गृहस्थ-संसारी लोग यदि कछु न करि पावैं तौ सम्भव है ईश्वर-ध्यान न दें, किंतु जिनकूँ खायवे, पीयवे, रहवे, पहिरवेकी व्यवस्था प्रभुने करी है; फिर मिल जायँ कहूँ श्रीसद्‌गुरु और तब वह चूकै तौ का ईश्वर बाकूँ क्षमा करि देगौ? सावधान! अब चूक न बनै। अवसर कूँ पूर्णरूप सौं सँभारि लेउ।

जो जहाँ है, वहाँ कौ कर्तव्य-पालन पूरौ करि लेय तौ आगे कौ मार्ग स्वतः सुलभ बनि जायगौ। पर यह बनि नहीं पावै।

कहूँ प्रेमिनकी चर्चा होय तौ मन ललचै कि मैं हूँ ऐसौ बनूँ। यही है सबकौ सार। याहीके ताँईं पूरौ प्रयत्न। अबतक जो संकल्प बने वही पायौ। अब संकल्प बनैं केवल इनके ताँईं ही।

**राग-द्वेष सौं बचिवे कौ एक ही सर्वोत्तम उपाय है—** सतत अपने साधनमें जुट्यौ रहै।

जीवन केवल इनके ताँईं बनै। इनके रिझायवेके ताँईं बनै और ठीक बनै। सत्यता सौं बनै। दम्भ न हो। संसार कूँ धोखौ न दे तौ एक ही जीवनमें बेड़ा पार।

साधन कियौ और ऊँची स्फुरणा न उठी तौ जान लेय कि साधन ठीक नहीं बन्यौ। कहूँ त्रुटि है, साधन ही आगे कौ मार्ग सुझाय देय है।

प्रेम-देवमें एक बड़ी गम्भीर बात है कि प्रेमके अतिरिक्त और कोई कामना न उठन पावै। प्रेम-पथमें हठ नहीं है। यहाँतक कि इनकूँ बुलायवेकी हूँ कामना न करै। अनुत्ताप होय केवल एक, हाय! हाय! इनने कितनी कृपा करी, किंतु मैं कछु नहीं करि पायौ। जहाँ हृदयमें संकीर्णता है, वहाँ श्रीभगवान् कौ कहा काम? वहाँ तौ कलियुग कौ ही निवास होयगौ।

**श्रीमद्भागवतजीके एक श्लोक कौ भाव है—**तुम्हारौ मन ही कह देय है कि तुम कहाँ सौं आये हो और कहाँ जाऔगे। यह अपने मन सौं ही पूछौ।

पतिव्रता यदि भूल सौं हूँ घूँघटकी ओट सौं हूँ पर-पुरुष कूँ देखि लेय तौ पातिव्रत नष्ट है जाय। ऐसैं ही साधक कूँ चहिए कि भूल सौं हूँ मायाकी याद न बनै, विषय-विकारनमें चित्त न जाय। यही है अध्यात्म। सब कछु श्रीभगवान्‌के ताँईं। जबतक ऐसौ नहीं बनैगौ, तबतक उपासना करते भये हूँ कल्प-के-कल्प बीति जायँगे।

**ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं।**
**ऐसे जन जग मैं रहैं, हरि को भूलत नाहिं॥**

निरन्तर अविछिन्न तैल-धारावत् वृत्ति इनमें ही लगी रहै, यही उपासना है। यही करनौं परैगौ। यह जो सत्संग है न, समय बितायवेके ताँईं नहीं है। कुछ लैवेके ताँईं है। '*सतसंगति संसृति कर अंता* (रा०च०मा० ७। ४५। ६)।' इतनौं महत्त्व है याकौ। जाने पूरे मन सौं भजन कियौ है, वाही कूँ भजन न बनिवे पै दुःख होय है। श्रीकबीरदासजी सत्यके ग्राहक रहे। वे ऊपरी बातनमें संतोष नहीं मानते।

**उनकौ सिद्धान्त है—**जो कुछ होय इनके ताँईं और इनके समक्ष ही होय। आराधना ही जीवन बनि जाय, यह परम-कर्तव्य है। यह तब ही बनेगौ, जब जीवन पवित्रतम होयगौ। यदि जीवन पवित्रतम नहीं है तौ यह बनि नहीं पावैगौ।

**प्रश्न—**व्यर्थ चिन्तन न होय, याकौ कोई उपाय है?

**उत्तर—**दौ बातें हैं—

—अपनौं साधन इतनौं बढ़ाय देय कि समय ही न मिलै। या साधनके पश्चात् निरन्तर साधनकी ही चिन्ता लगी रहै।

—इनके प्रेममें डूबि जाय। तौ यह तौ अपने बसकी बात ही नहीं। करिवेकी बात है पहली।

**तीन बातें हैं—**साधन, साधनोपयोगी जीवन और साध्य। इनमें साधनोपयोगी जीवन आवश्यक है।

**या पथमें दो बातनकी बड़ी सावधानी राखै—**जो इनकी ओर चलि रह्यौ होय, बाकी तन-मन-धन सौं सहायता करि दे।

इनकी ओर लग्यौ भयौ होय, बाकूँ इनसौं अलग करिवेमें निमित्त न बनैं। [ क्रमशः ]

# जीवन और जीवनधन अपनेमें हैं

( सुश्री अर्पिताजी )

आज जो जीवनमें समस्याएँ दिखायी देती हैं—चाहे संसारकी हों, चाहे आध्यात्मिक हों और चाहे आस्तिकताकी हों, उनका मूल कारण है कि हमने उनका ठीक-ठीक अर्थ नहीं समझा, अपना दृष्टिकोण नहीं बदला।

सोचनेपर संसारकी समस्याएँ तो समझमें आती हैं कि जितना धन चाहते हैं मिल नहीं रहा, जैसा ऊँचा पद चाहते हैं नहीं मिला। कमर कसकर मेहनत भी की, पर सफलता नहीं मिली। बेटीका विवाह बढ़िया घर-वर देखकर करना चाहा, पर जितना संतोष मिलना चाहिये था मिला नहीं, आदि-आदि।

आध्यात्मिक समस्यापर विचार करें तो क्या हम नहीं जानते कि सम्पूर्ण सृष्टिमें मेरा व्यक्तिगत कुछ नहीं है और मेरे लिये भी नहीं है? जानते तो हैं पर मानते हैं क्या? यदि मान लिया होता, यह सत्य स्वीकार कर लिया होता तो क्या निर्ममता नहीं आ जाती? ममताके कारण विकारोंमें क्यों आबद्ध होते? दिनका चैन, रातकी नींद क्यों उड़ती? चिन्ता रहती क्या? क्या हमने अपने वृद्धजनोंसे नहीं सुना—चिता जलाये एक बार और चिन्तारूपी चिता दिन-रात जला रही है!

खूब सुना—**'ब्रह्मं सत्यं जगन्मिथ्या'** पर क्या देखे हुएका आकर्षण मिटा? कामनाएँ छूटीं? क्यों नहीं अध्यात्मका प्रभाव हुआ? क्योंकि ऐन्द्रिय दृष्टिके प्रभावको नहीं मिटाया। ऐन्द्रिय दृष्टिसे यह शरीर और संसार सत्य एवं सुखद प्रतीत होते हैं। पर क्या हम स्वयं नहीं देखते कि इसमें सतत परिवर्तन है, क्षणभंगुरता है? क्या हमारी बुद्धि-दृष्टि हमें सचेत नहीं करती? करती तो है, पर क्षणिक, ऐसा लगता है कि ये सभी घटनाएँ होती होंगी पर हम तो पूजा-पाठ करते हैं, हमने शास्त्र पढ़ा है, हमारे साथ कुछ नहीं होगा। टालते रहते हैं, मिथ्या समझते रहते हैं, अपनेको बहलाते रहते हैं और दुःखी होते रहते हैं। संसार तो प्रतिक्षण सचेत कर रहा है—'मेरी ओर मत देखो। मैं तुम्हारे काम नहीं आऊँगा। मैं तो प्यारे प्रभुका हूँ। तुम भी उन्हींको देखो। मैं तुम्हारी माँग पूरी नहीं कर सकता; क्योंकि मुझमें मेरा अस्तित्व है ही नहीं। मेरी स्वतन्त्र स्थिति नहीं है।'

जबतक शरीरके आधारपर—'मैं-मैं'—रहेगी तथा संसारके प्रभावसे मेरा-मेरा रहेगा, तबतक शान्ति मिलनेवाली नहीं है, चैन मिलनेवाला नहीं है। क्या हमने नहीं सुना कि जहाँ काम, तहाँ राम नहीं—*'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं। प्रेम गली अति साँकरी, ता मैं दो न समाहिं॥'* अतः ज्ञानपूर्वक निर्णय करना ही होगा कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये। ममता गयी और कामना गयी तो मिला क्या, निर्ममतासे उदित निर्विकारता और निष्कामतासे उदित चिरशान्ति। निर्विकारता तथा निष्कामतासे संसारसे असंगकी सामर्थ्य आती है। संसारसे सम्बन्ध टूटता है और जो है उससे अपने-आप सम्बन्ध जुड़ता है। पर बड़े ही दुःखके साथ कहना पड़ता है कि ग्रन्थोंका पारायण किया बहुत, पर निर्मोहता, निष्कामताका जीवनमें दर्शन नहीं हुआ। निर्मोहता, निष्कामताके बिना असंगता कैसे आये? और अपने स्वरूपमें स्थित कैसे रहा जाय? आत्मसंतुष्टि, आत्मरति हो कैसे? ज्ञानका आदर करके अकिंचन-अचाह और अप्रयत्न हो जायँ तो संसारके प्रभावसे मुक्ति मिल जाय। सुखी हों, पर सुखकी दासतामें आबद्ध न हों। दुःख आये पर हम दुःखी न हों, दुःखका भय न सताये। बल्कि सुख-दुःखका सदुपयोग कर सुख-दुःखके बन्धनसे मुक्त हो जायँ।

आस्तिक-पथसे भी देखें हम अपने-आपको तो क्या मिलेगा? प्रभुकी चर्चा तो है, पर प्रभुके प्रति अपनापन नहीं है। प्रभुका चिन्तन भी है, पर साथमें संसारका चिन्तन ही अधिक होता है। अपनेको भगवद्भक्त भी कहते हैं, पर पता नहीं कितनोंके भक्त हैं। कथनी कुछ, करनी कुछ और जीवन कुछ। यही कारण है कि परमात्मा हर जगह मौजूद हैं, पर उनसे मिलन नहीं हो पाता।

ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तन करना सरल है, पूजा करना सरल है, तीर्थ करना सरल है; अनुष्ठान करना सरल

है, व्रत-उपवास करना सरल है, पर एकमात्र प्रभुमें विश्वास करना बड़ा ही दुर्लभ है। इसीलिये जीवनमें कभी संसार है, तो कभी परमात्मा। दस सम्बन्ध संसारके साथ हैं और एक सम्बन्ध परमात्मासे जोड़ लिया है तो परमात्माकी याद भी उतने ही हिस्सेमें आती है अर्थात् एक बटा ग्यारह। जीवनमें और पूजामें विभाजन है। दो घंटे पूजा और शेष घंटोंमें संसार। तो श्रीकबीरदासजीकी वाणीमें—

मेरो तेरो मनुआ कैसे एक होय रे?

श्रीमहाराजजी* साधकोंकी दशासे बड़े ही व्यथित होते और कहते—'भैया, जीवनके सत्यको स्वीकार करो, तुम्हारी सभी समस्याएँ हल हो जायँगी। तुम साधना करनेकी सोचते हो, मैं कहता हूँ, सत्संग करो। किया हुआ साधन जीवनका स्वरूप नहीं बनता, तुम्हें स्वाधीन नहीं बनाता। सदैव परिश्रम एवं पराश्रयमें आबद्ध रहते हो और क्या पाते हो? साधन बलपूर्वक करते हो और हो जाता है असाधन। करते हो साधन-चिन्तन और होता है व्यर्थ चिन्तन। करते हो सत्कर्म और विवेक-विरोधी कर्म कर बैठते हो। जो स्वतः होना चाहिये था उसे करनेकी सोचते हो और जो करना चाहिये था उसे कर नहीं पाते। इसलिये सत्संग करो, तो साधन तुममेंसे अभिव्यक्त होगा। जो अभिव्यक्त होगा, वह जीवनका स्वरूप बनेगा। विवेक-विरोधी कर्मका त्याग सत्संग है और कर्तव्यपरायणता साधन है। कर्तव्यपरायणता अर्थात् मिले हुएके सदुपयोगके द्वारा संसारका भी सम्बन्ध निभ जायगा। कुशलतापूर्वक और जिस भावसे कार्यमें प्रवृत्त होओगे, करनेके पश्चात् उसका प्रेम जीवनमें प्रकट होगा। सेवाके भावसे कार्य करोगे तो विश्वप्रेम प्राप्त होगा। अपने लिये संसारकी आवश्यकता नहीं रहेगी, योगमें प्रवेश होगा।'

विवेक-विरोधी सम्बन्धका त्याग सत्संग है और असंगता साधन है। संसारमें रहेंगे माली बनकर, मालिक बनकर नहीं। संसारमें रहते हुए ही ममता, कामना, तादात्म्य छूट जायँगे। यदि हम शरीरको 'मैं' और 'मेरा' मानना छोड़ देंगे तो वास्तवमें शरीरसे न हमारा नित्य सम्बन्ध है, न जातीय सम्बन्ध और न ही आत्मीय सम्बन्ध। असंगतासे संसारसे सम्बन्ध टूटता है और अविनाशीसे सम्बन्ध जुड़ जाता है। तब 'यह' और 'मैं' 'हैं' में विलीन हो जाते हैं।

विवेक-विरोधी विश्वासका त्याग सत्संग है और आत्मीयता साधन। जब जीवनमें वस्तु-विश्वास, व्यक्ति-विश्वास, धन-विश्वास, बल-विश्वास आदि नहीं रहते, तब प्रभु-विश्वास सजीव होता है, दृढ़ होता है। अन्य विश्वास और अन्य सम्बन्धने ही हमें अपने स्वरूपसे और अपने प्यारेसे विमुख किया है। प्रभु ही अपने हैं, पर आज उनकी स्मृति नहीं है। संसारकी सम्मुखतासे प्रभुसे विमुखता हो गयी।

श्रीमहाराजजीसे एक साधकने प्रश्न किया कि महाराजजी! आपके भगवान् कहाँ रहते हैं? श्रीमहाराजजीने उत्तर दिया कि भैया! तुम्हारे पीछे ही खड़े रहते हैं। उस साधकने पीछे मुड़कर देखा तो श्रीमहाराजजीने कहा—भैया! जिधर तुम्हारी पीठ हो गयी वे उधर ही मुड़ गये। साधकने कहा—महाराजजी! क्या पहेली बुझा रहे हैं? श्रीमहाराजजीने कहा—'भैया! परमात्मा किसी दिशा-विशेषमें थोड़े ही हैं। वे तो सर्वत्र हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं है जहाँ वे न हों। जब सर्वत्र हैं तो तुममें भी तो हैं। बाहर देखते हो, अपनेमें क्यों नहीं देखते? अपनेमें तो तब न दिखें जब संसारका दिखाना बंद हो! कैसी विचित्र बात है कि वे निरन्तर हमें देख रहे हैं और हम उनके बनाये खिलौनोंको लालचभरी दृष्टिसे देखते रहते हैं। जीवन और जीवनधन तुममें ही हैं। अब अपनी ओर निहारो। सत्संगके द्वारा वह दृष्टि खुल जायगी। दो बातें ज्ञानपूर्वक निर्णय कर लो—(१) मेरा अपना कुछ नहीं है, (२) मुझे अपने लिये कुछ नहीं चाहिये और दो बातें आस्थापूर्वक स्वीकार कर लो—(१) प्रभु अपने हैं और (२) उनका प्रेम ही मेरा जीवन है।'

सत्यकी स्वीकृतिमें जीवन है और जीवनधनकी स्वीकृतिमें उनकी प्राप्ति निहित है।

---

* स्वामी श्रीशरणानन्दजीद्वारा संस्थापित मानवसेवासंघकी महामन्त्री सुश्री अर्पिताजीका यह लेख है। यहाँ श्रीमहाराजजीके सम्बोधनसे स्वामी श्रीशरणानन्दजीका संकेत है—सं०।

# विदुरनीति

## सातवाँ अध्याय

[ गताङ्क पृ०-सं० ८७८ से आगे ]

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता॥ ५९॥

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत्॥ ६०॥

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः॥ ६१॥

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः॥ ६२॥

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति॥ ६३॥

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते॥ ६४॥

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्॥ ६५॥

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥ ६६॥

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्॥ ६७॥

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु॥ ६८॥

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्॥ ६९॥

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥ ७०॥

जो शक्तिहीन है, वह तो सबपर क्षमा करे ही; जो शक्तिमान् है, वह भी धर्मके लिये क्षमा करे तथा जिसकी दृष्टिमें अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिये तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है॥ ५९॥ जिस सुखका सेवन करते रहनेपर भी मनुष्य धर्म और अर्थसे भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे; किंतु मूढव्रत (आसक्ति एवं अन्यायपूर्वक विषयसेवन) न करे॥ ६०॥ जो दुःखसे पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मीका वास नहीं होता॥ ६१॥ दुष्टबुद्धिवाले लोग सरलतासे युक्त और सरलताके ही कारण लज्जाशील मनुष्यको अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं॥ ६२॥ अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अतीव शूरवीर, अधिक व्रत-नियमोंका पालन करनेवाले और बुद्धिके घमण्डमें चूर रहनेवाले मनुष्यके पास लक्ष्मी भयके मारे नहीं जाती॥ ६३॥ राजलक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानोंके पास रहती है और न बहुत निर्गुणोंके पास। यह न तो बहुत-से गुणोंको चाहती है और न गुणहीनताके प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौकी भाँति यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है॥ ६४॥ वेदोंका फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययनका फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्रीका फल है रति-सुख और पुत्रकी प्राप्ति तथा धनका फल है दान और उपभोग॥ ६५॥ जो अधर्मके द्वारा कमाये हुए धनसे परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरनेके पश्चात् उसके फलको नहीं पाता; क्योंकि उसका धन बुरे रास्तेसे आया होता है॥ ६६॥ घोर जंगलमें, दुर्गम मार्गमें, कठिन आपत्तिके समय, घबराहटमें और प्रहारके लिये शस्त्र उठे रहनेपर भी सत्त्व (मनोबल)-सम्पन्न पुरुषोंको भय नहीं होता॥ ६७॥ उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और सोच-विचारकर कार्यारम्भ करना—इन्हें उन्नतिका मूलमन्त्र समझिये॥ ६८॥ तपस्वियोंका बल है तप, वेदवेत्ताओंका बल है वेद, असाधुओंका बल है हिंसा और गुणवानोंका बल है क्षमा॥ ६९॥ जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन और औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं होते॥ ७०॥

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते॥ ७१॥

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्॥ ७२॥

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके॥ ७३॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम्॥ ७४॥

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः॥ ७५॥

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम्॥ ७६॥

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा॥ ७७॥

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्॥ ७८॥

मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः॥ ७९॥

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम्॥ ८०॥

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्॥ ८१॥

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्॥ ८२॥

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते॥ ८३॥

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति॥ ८४॥

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा॥ ८५॥

जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके प्रति भी न करे। थोड़ेमें धर्मका यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामनासे प्रवृत्ति होती है, वह तो अधर्म है॥ ७१॥ अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको सद्व्यवहारसे वशमें करे, कृपणको दानसे जीते और झूठपर सत्यसे विजय प्राप्त करे॥ ७२॥ स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्वके अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिकका विश्वास नहीं करना चाहिये॥ ७३॥ जो नित्य गुरुजनोंको प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषोंकी सेवामें लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं॥ ७४॥ जो धन अत्यन्त क्लेश उठानेसे, धर्मका उल्लङ्घन करनेसे अथवा शत्रुके सामने सिर झुकानेसे प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाइये॥ ७५॥ विद्याहीन पुरुष, संतानोत्पत्तिरहित स्त्रीप्रसंग, आहार न पानेवाली प्रजा और बिना राजाके राष्ट्रके लिये शोक करना चाहिये॥ ७६॥ अधिक राह चलना देहधारियोंके लिये दुःखरूप बुढ़ापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतोंका बुढ़ापा है, सम्भोगसे वञ्चित रहना स्त्रियोंके लिये बुढ़ापा है और वचनरूपी बाणोंका आघात मनके लिये बुढ़ापा है॥ ७७॥ अभ्यास न करना वेदोंका मल है, ब्राह्मणोचित नियमोंका पालन न करना ब्राह्मणका मल है, बाह्लीक देश (बलख-बुखारा) पृथ्वीका मल है तथा झूठ बोलना पुरुषका मल है, क्रीड़ा एवं हास-परिहासकी उत्सुकता पतिव्रता स्त्रीका मल है और पतिके बिना परदेशमें रहना स्त्रीमात्रका मल है॥ ७८-७९॥ सोनेका मल है चाँदी, चाँदीका मल है राँगा, राँगेका मल है सीसा और सीसेका भी मल है मल॥ ८०॥ सोकर नींदको जीतनेका प्रयास न करे, कामोपभोगके द्वारा स्त्रीको जीतनेकी इच्छा न करे, लकड़ी डालकर आगको जीतनेकी आशा न रखे और अधिक पीकर मदिरा पीनेकी आदतको जीतनेका प्रयास न करे॥ ८१॥ जिसका मित्र धन-दानके द्वारा वशमें आ चुका है, शत्रु युद्धमें जीत लिये गये हैं और स्त्रियाँ खान-पानके द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है॥ ८२॥ जिनके पास हजार (रुपये) हैं, वे भी जीवित हैं तथा जिनके पास सौ (रुपये) हैं, वे भी जीवित हैं; अतः महाराज धृतराष्ट्र! आप अधिकका लोभ छोड़ दीजिये, इससे भी किसी तरह जीवन रहेगा ही॥ ८३॥ इस पृथिवीपर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब-के-सब एक पुरुषके लिये भी पूरे नहीं हैं—ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोहमें नहीं पड़ता॥ ८४॥ राजन्! मैं आपसे फिर कहता हूँ, यदि आपका अपने पुत्रों और पाण्डवोंमें समानभाव है तो उन सभी पुत्रोंके साथ एक-सा बर्ताव कीजिये॥ ८५॥ **( क्रमशः )**

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

# परिवारमें कैसे रहें ?

## पत्नीका अनुरागमूलक साधन—पतिसेवा

### [ शैव्याकी कथा ]

( पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र )

हमारे भगवान् बड़े दयालु हैं। उन्होंने अंशस्वरूप हम जीवोंको इतने स्वाभाविक सनातन विधान दिये हैं कि इन साधनोंके अनुष्ठानसे सुख भी मिलता रहे और सभी साधनोंसे श्रेष्ठ भी हों। जैसे बच्चोंको अपने माता-पितापर स्वाभाविक अनुराग होता है। शैशवावस्थामें तो वे इनके बिना रोते-चिल्लाते रहते हैं। इस स्वाभाविक स्नेहको भगवान्ने पुत्रके लिये सर्वश्रेष्ठ साधनके रूपमें दिया है, जिसकी चर्चा मूक चाण्डाल एवं सुकर्माके उपाख्यानोंमें की गयी है। इसी प्रकार पत्नीका अनुराग पतिमें होना स्वाभाविक है। भगवान्ने पत्नीको सर्वश्रेष्ठ साधनके रूपमें इसे प्रदान किया है।

पतिके सुखमें अपना सुख पत्नीके लिये स्वाभाविक है; क्योंकि प्रेमका स्वभाव ही होता है कि प्रेमी प्रेमास्पदके सुखको अपना सुख एवं उसके दुःखको अपना दुःख मानता है। इसलिये प्रेमी अपने प्रेमास्पदके हित-साधनमें सदैव तत्पर रहता है। इस तरह पत्नीका अपने पतिके लिये जो स्वाभाविक अनुराग है, उसीको भगवान्ने सर्वश्रेष्ठ साधनके रूपमें प्रदान किया है; जैसे सूर्यके उदयको रोक देना कोई साधारण सिद्धि नहीं है, किंतु पत्नी पतिकी सेवाकर यह सिद्धि भी सरलतासे प्राप्त कर लेती है। इसका सरस उदाहरण इतिहासके पृष्ठोंपर मिल जाता है।

मध्य देशमें एक नगरी थी। उसमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी। उसका नाम शैव्या था। वह अपने पतिके प्रेममें सदैव डूबी रहती थी एवं उसके हितके साधनोंमें सदैव लगी रहती थी।

बचपनमें ही शैव्याको बता दिया गया था कि भगवान् दयाके सागर हैं। उन्होंने मनुष्य-जीवनको सार्थक करनेके लिये कुछ ऐसे विधान बना दिये हैं, जो स्वाभाविक अनुरागमूलक हैं। अनुरागमूलक होनेके कारण वे अत्यन्त सरस और सुगम हैं और उनका फल तपस्या आदि कष्टकर साधनोंसे मिलनेवाले फलसे कम नहीं अपितु अधिक ही है।

उनमें पुरुषोंके लिये साधन है—माता-पिताको भगवान्का प्रतीक मानकर उनकी पूजा करना। दूसरा साधन नारियोंके लिये है—पतिको भगवान्का प्रतीक मानकर उनकी पूजा करना। पुत्री शैव्या मातासे पतिसेवाकी बात सुनकर कुछ उत्सुक हो उठी। वह जानती थी कि उसका विवाह शीघ्र ही होनेवाला है। उसने माँसे पूछा—माँ! जिससे विवाह हो जाय, उस पतिकी पूजासे क्या लाभ होता है?

माँने कहा—तुम कुछ श्लोकोंको याद कर लो, इन श्लोकोंको तुम नित्य सुनती हो, जब मैं पाठ करती हूँ—

**पतिव्रता च या नारी पत्युर्नित्यं हिते रता।**
**कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतं शतम्॥**

(पद्मपु० सृष्टि० ५२।५२)

जो नारी पतिव्रता होती है, नित्य ही पतिके हितमें लगी रहती है; ऐसी पतिव्रता नारी अपने श्वशुरकुलकी सौ पीढ़ियोंको और माताकुलकी सौ पीढ़ियोंको तार देती है।

पुत्री शैव्याने कहा—माँ! दो कुलोंकी सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार करना तो बहुत बड़ा फल है, किंतु मैं यह जानना चाहती हूँ कि पतिव्रताको निजी लाभ क्या मिलता है? माँने कहा—पतिव्रता नारी तो इतनी महान् हो जाती है कि मनुष्य तो क्या सभी देवताओं और मुनियोंकी भी पूज्य हो जाती है।

पतिव्रता और उसके पतिको यह लाभ है कि दोनोंको स्वर्गलोक मिलता है और तबतक वे स्वर्गलोकमें रहते हैं जबतक प्रलय नहीं हो जाता। सृष्टि-क्रममें वे दोनों पृथ्वीपर फिर जन्म लेते हैं और पतिव्रताका पति चक्रवर्ती सम्राट् बनता है। पुनः मृत्युके बाद वे स्वर्गके राजा होते हैं। इस प्रकार सौ जन्मोंके बाद वे मुक्त हो जाते हैं—

**स्वर्गं भुनक्ति तावच्च यावदाभूतसम्प्लवम्।**
**स्वर्गाद्भ्रष्टो भवेद्वास्याः सार्वभौमो नृपः पतिः॥**
**अस्यैव महिषी भूत्वा सुखं विन्देदनन्तरम्।**
**पुनः पुनः स्वर्गराज्यं तस्य तस्या न संशयः॥**
**एवं जन्मशतं प्राप्य अन्ते मोक्षो भवेद् ध्रुवम्॥**

(पद्मपु० सृष्टि० ५२।५३—५५)

पुत्री शैव्या माँकी बात बहुत ध्यान और नम्रतासे सुन रही थी, किंतु एक जिज्ञासाका भाव उसके मुखपर अंकित हो रहा था। माँने पूछा—बेटी! अभी तुम कुछ पूछना चाहती हो क्या? पूछो!

शैव्या और विनम्र होकर बोली—हाँ माँ, मैं पतिव्रताके इन फलोंको सुनकर विस्मित हूँ। पर इस जन्ममें उसका क्या फल मिलता है? माँने बेटीको अपनी गोदमें बैठाते हुए कहा कि तुहारे प्रश्नसे मैं अति प्रसन्न हूँ। किंतु इस प्रश्नका दर्शनसे सम्बन्ध है, इसलिये सावधान होकर सुनो—

ईश्वर न किसीको दुःख देता है, न सुख। इन दोनोंको देनेवाला कर्म होता है। पहले जन्ममें प्राणी अच्छा या बुरा जैसा कर्म करता है, उसीके आधारपर उसे सुख या दुःख प्राप्त होता है। पुत्रीने गम्भीर होकर पूछा—तो भगवान्के अतिरिक्त भी कोई कारण होता है क्या?

माँ बोली—हाँ बेटी! कारण दो प्रकारके होते हैं—साधारण और असाधारण। इसको दृष्टान्तसे समझो—जैसे प्रत्येक वृक्षके लिये साधारण कारण तो बीज होता है और असाधारण मेघका जल। नीमका बीज, नीबूका बीज, ईखका बीज और इमलीका बीज खेतमें छींट दिया जाय और यदि वृष्टिका जल न मिले तो कोई भी बीज न तो उग सकता है, न फल दे सकता है। इसी प्रकार भगवान् सभीके असाधारण कारण होते हैं। उनके बिना न तो किसीकी सृष्टि हो सकती है, न पालन और न ही संहार। बीजको साधारण कारण इसलिये माना जाता है कि नीममें जो कड़ुवापन, इमलीमें जो खट्टापन, मिर्चमें जो तीखापन और ईखमें जो मीठापन है वह बीजके ही कारण है, वृष्टिका जल तो एक ही है। इसलिये मनुष्यको अच्छे-बुरे कर्मोंका फल सुख-दुःखरूपमें मिलता है। परंतु असाधारण कारण भगवान् इसकी व्यवस्था न करें तो केवल कर्म कुछ नहीं कर सकता। इसलिये हमें भगवान्को याद करना चाहिये और उनके प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहना चाहिये। मान लो, किसीने किसीकी हत्या कर दी है तो इस कर्मका परिणाम उसे भुगतना ही पड़ेगा। अगर इसे वह नहीं भोगेगा तो उसे नरक भोगना पड़ेगा। भगवान्की यह दया ही है कि वे प्राणीको नरकसे बचानेके लिये यहीं दुःख-रोग आदिके रूपमें उसे भोगनेकी व्यवस्था कर देते हैं। यह उनका अनुग्रह ही है।

विवाहके अनन्तर पूर्व जन्मके पापके अनुसार शैव्याका पति कुष्ठ-रोगसे ग्रसित हो गया था। उसके शरीरमें ऐसे घाव हो गये थे, जिनसे बराबर पीब आदि रिसते रहते थे। शैव्या अपने पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी। पतिके घावोंको धोती, पोंछती और दवा लगाती। पतिके मनमें जो-जो इच्छाएँ होतीं, उन्हें सदैव पूरी करनेकी कोशिश करती। एक दिन उसके पतिने सड़कपर जाती हुई एक परम सुन्दरी वेश्याको देखा। देखते ही वह उसपर अत्यन्त आसक्त हो गया। वेश्याके चले जानेपर उसके पतिको इतना कष्ट हुआ कि वह जोर-जोरसे साँसें लेने लगा। उसका उच्छ्वास सुनकर शैव्या बाहर निकलकर पतिके पास आयी और उससे पूछा कि स्वामी! आप लम्बी साँसें क्यों खींच रहे हैं? आप अपना प्रिय कार्य बताएँ, उसे अवश्य पूर्ण करनेका प्रयास करूँगी। क्योंकि आप मेरे प्रियतम हैं, आपकी खुशी ही मेरी खुशी है, आप मुझे आज्ञा दें।

कोढ़ी पतिने कहा कि अभी इस मार्गसे एक वेश्या जा रही थी। वह परम सुन्दरी है। उसके सौन्दर्यने मुझे अभिभूत कर दिया है। उसीके विरहमें मैं तड़प रहा हूँ। मैं कोढ़ी एवं निर्धन हूँ। मैं उसे कैसे प्राप्त कर सकूँगा और इस कार्यमें तुम मेरी क्या सहायता करोगी? पतिकी बात सुनकर पतिव्रता शैव्याने कहा कि स्वामी! इस समय आप धैर्य रखें, इस कार्यमें मैं आपकी पूरी सहायता करूँगी। पतिव्रता बुद्धिमान् थी, उसने एक उपाय ढूँढ़ निकाला। वह उषाकालमें उठकर गोबर एवं झाड़ू लेकर वेश्याके घरके पास जा पहुँची। उसने वेश्याके आँगन एवं गली-कूचोंको झाड़कर एवं गोबरसे लीप-पोतकर चमका दिया। किसीकी दृष्टि न पड़े, अतः वह शीघ्र ही घर लौट आयी। इस तरह शैव्या तीन दिनोंतक वेश्याके घरको लीप-पोतकर साफ करनेके साथ-साथ लोगोंसे दृष्टि बचानेमें भी सफल हो गयी।

पहले ही दिन अपने घरकी उत्तम सफाई देखकर वेश्याको बड़ा अच्छा लगा और विस्मय भी हुआ कि आज घरकी सफाई किसने की! वेश्याने अपने नौकरोंसे पूछा कि क्या तुममेंसे किसीने घरकी इतनी सुन्दर सफाई की? परंतु किसीने भी स्वीकार नहीं किया। लगातार तीन दिनोंतक यह कार्य देखकर उसके मनमें विचार आया कि मैं स्वयं देखूँगी कि यह कार्य कौन कर रहा है? जब चौथे दिन शैव्या फिर सफाई करने लगी तो वेश्या उसे देखकर पहचान गयी। वेश्याने उसके पैरोंपर गिरकर कहा—आप जैसी पवित्र महिलाके इस कार्यसे मैं घोर नरकमें पड़ूँगी। आप मुझसे क्या चाहती हैं? धन, रत्न, आभूषण जो भी आप चाहें, मैं देनेको तैयार हूँ। पतिव्रताने कहा—रूपश्री!

मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है। मुझे तो तुम्हींसे कुछ काम है, यदि तुम कहो तो मैं कहूँ। यदि तुम मेरे मनोरथको पूर्ण कर दोगी तो मेरा हृदय अत्यन्त संतुष्ट हो जायगा।

वेश्याने कहा कि आप अपने अभिलषित कार्यको बताएँ, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी। पतिव्रताने अपने पतिकी अभिलाषाको कह सुनाया। सुनते ही वेश्या हतप्रभ हो गयी। दुर्गन्धयुक्त शरीरवाले कोढ़ी व्यक्तिसे संसर्गकी बात सोचकर उसके मनमें बहुत संताप हुआ। परंतु उसने पतिव्रतासे कहा कि ठीक है, मैं तुम्हारे पतिकी केवल एक दिन इच्छापूर्ति करूँगी।

पतिव्रताने कहा कि मैं आधी रातको अपने पतिको तुम्हारे पास लाती हूँ। वेश्याने स्वीकृति प्रदान कर दी। शैव्या प्रसन्न होकर घर आयी और अपने पतिसे कहा कि स्वामी! आपको आज ही उसके घर जाना है। शैव्याके पतिने कहा कि मुझसे चला नहीं जायगा, फिर मेरी इच्छा कैसे पूर्ण होगी? शैव्याने कहा कि मैं अपनी पीठपर बैठाकर आपको उसके घर ले जाऊँगी और मनोरथ सिद्ध हो जानेपर लौटाकर फिर वापस ले आऊँगी।

आधी रातमें शैव्या पतिको पीठपर बैठाकर वेश्याके घर चल पड़ी। घोर अन्धकार था, शैव्याको देखनेमें परेशानी हो रही थी, किंतु विद्युत्की चमक पाकर चल पड़ती थी। उस दिन राजाके सिपाहियोंने माण्डव्य ऋषिको चोर समझकर सूलीपर चढ़ा दिया था। सूली नीचेसे ऊपर-मस्तकके पार चली गयी थी। उसी रास्तेसे शैव्या
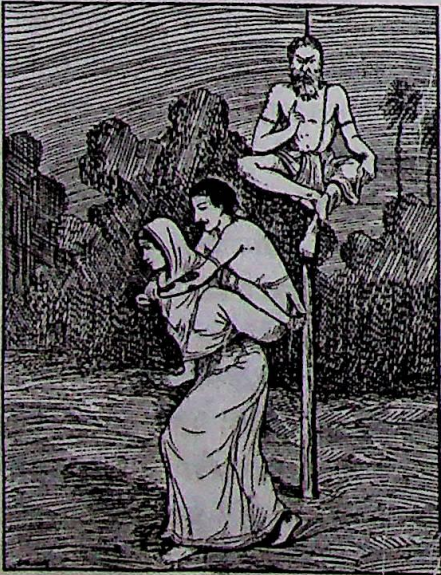
अपने पतिको लेकर वेश्याके घर जा रही थी। संयोगवश शैव्याके पतिका शरीर माण्डव्य ऋषिके शरीरसे टकरा गया। ऋषिकी समाधि भङ्ग हो गयी। उन्हें अत्यन्त पीड़ा होने लगी और उन्होंने शाप दे दिया कि जिसने मुझे इस पीड़ाकी अवस्थामें पहुँचा दिया है, वह सूर्योदय होते ही भस्म हो जायगा। यह शाप सुनते ही शैव्या पतिके भावी वियोगको सोचकर संतप्त हो उठी और बोली कि जाओ अब सूर्योदय ही नहीं होगा। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन दिनतक सूर्य निकला ही नहीं, दुनियाके सारे जड़-चेतन व्याकुल हो उठे। देवताओंसे तीनों लोकोंका यह दुःख देखा न गया और उन्होंने पितामह ब्रह्मासे प्रार्थना की कि आप शीघ्र कुछ उपाय करें अन्यथा सारा विश्व नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। यह सुनते ही पितामह ब्रह्मा देवताओंके साथ विमानपर चढ़कर शैव्याके पास पहुँचे और कहा कि माता! सूर्योदयके विरुद्ध जो तुम्हारा

क्रोध है उसे त्याग दो, नहीं तो सारी दुनिया नष्ट हो जायगी। पतिव्रता शैव्याने कहा कि पति ही मेरे सब कुछ हैं। सूर्योदय होते ही ऋषिके शापसे इनकी मृत्यु हो जायगी। इसीलिये मैंने सूर्यको उदय होनेसे रोक रखा है। ब्रह्माने कहा कि तुम सूर्यको उगनेका आदेश दो। तुम्हारे पति शापवश भस्म हो जायँगे, परंतु मैं उन्हें जिला दूँगा और कामदेवके समान सुन्दर शरीर भी बना दूँगा। तब शैव्याने सूर्योदय होनेका आदेश दिया। शापवश उसका पति भस्म हो गया, परंतु ब्रह्माके कथनानुसार अत्यन्त

रूपवान् शरीर धारण कर पुनर्जीवित हो गया। ठीक उसी समय एक तेजस्वी विमान आया, जो साध्वी शैव्याको उसके पतिके साथ बैठाकर स्वर्गलोक ले गया (पद्मपुराण)।
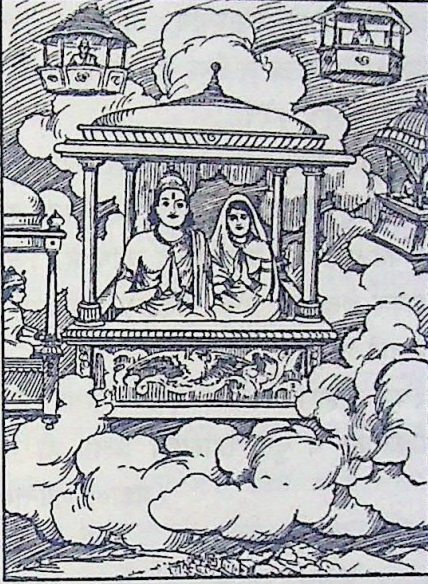
किसीके कहनेसे सूर्यका न उगना और आज्ञा पाकर उग जाना—यह अद्भुत चमत्कार है। इस चमत्कारको बड़े-बड़े साधक भी नहीं पा सकते। यह है पति-सेवाका सुप्रभाव।

स्कन्दपुराणके अनुसार ब्रह्माने पतिव्रताके महत्त्वको बतानेके लिये देवताओंको सती अनसूयाके पास भेजा। अनसूयाके द्वारा समझाये जानेपर शैव्याने सूर्योदय होने दिया। इसके बाद उसका पति मरकर फिर जीवित हो गया और कामदेवके समान सुन्दर शरीरवाला हो गया। उसका मन भी अपनी पत्नीमें लग गया। यह है पतिव्रताका सुप्रभाव।

अन्य पुराणोंमें पितामह ब्रह्माने सतीधर्मके महत्त्वको अधिक प्रख्यापित करनेके लिये देवताओंसे कहा—सतीको सती ही समझा सकती है। आपलोग महान् पतिव्रता अनसूयासे इस शैव्याको समझानेको कहें। महासती अनसूयाके समझानेसे सती शैव्याने आदेश दिया और सूर्य उदय हो गया। सूर्योदय होते ही शापवशात् शैव्याका पति भस्म हो गया, परंतु सती अनसूया और देवोंकी कृपासे वह तुरंत जी उठा तथा तन-मन दोनोंसे सुन्दर हो गया। वह कोढ़ी पति इतना सुन्दर हो गया जितना कि कामदेव। (गरुडपु० १। १४२, मार्कण्डेयपु० १६, स्कन्दपु० ५। ३। २६९—२७२) [ क्रमशः ]

*नीतिके आख्यान—*

(१)

# आत्महत्या महान् पाप है

## [ काश्यप मुनि और गीदड़की कथा ]

प्राचीन कालमें एक धन-सम्पन्न वैश्य रहता था। वह धनके मदमें सदा चूर रहा करता था। एक दिन वह अपने रथसे कहीं जा रहा था। उसी मार्गसे एक निर्धन, किंतु तपस्वी ऋषि-बालक काश्यप भी जा रहे थे। वैश्यने देखा कि ऋषि-बालक आगे-आगे जा रहे हैं। तब उस मदोन्मत्त वैश्यने अपने रथके धक्केसे उन ऋषि-बालकको गिरा दिया और आगे बढ़ गया। ऋषि-बालक पीड़ासे कराह उठे। उन्होंने मनमें यह विचार किया कि मेरी निर्धनताको देखकर ही धनके मदसे उन्मत्त इस वैश्यने मेरा यह अपमान किया है। वास्तवमें धनहीनता महान् दुःख है। निर्धन रहनेसे तो जगह-जगह अपमान ही होता है, अतः इस जीवनसे क्या लाभ! इससे तो मर जाना ही ठीक है। यह सोचकर उन्होंने आत्महत्याका निर्णय कर लिया।

उन ऋषि-बालककी धनके प्रति लालसा तथा आत्महत्याका संकल्प देखकर देवराज इन्द्र गीदड़का रूप धारणकर उनके पास आये और कहने लगे—
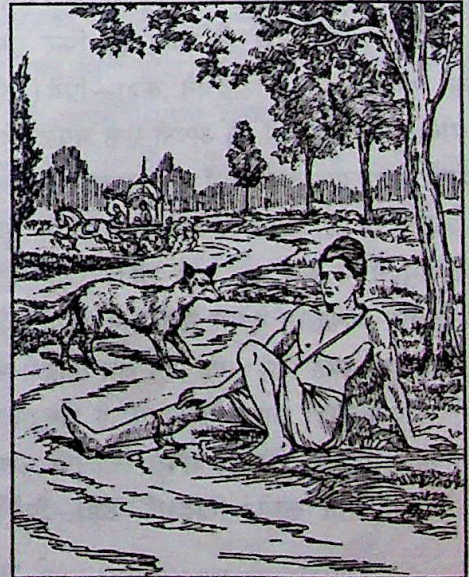
ऋषि-बालक! सभी प्राणी इस दुर्लभ मनुष्य-योनिकी प्राप्तिकी कामना करते रहते हैं, उसपर भी ब्राह्मणत्व और तपकी निष्ठा और भी अधिक दुर्लभ है, यह सब पाकर एवं एक श्रोत्रिय ब्राह्मण होते हुए भी आप उसपर दृष्टिदोष करके मृत्युका वरण करना चाहते हैं, यह तो सर्वथा अनुचित है। आप लोभके वशीभूत हो गये हैं, जो आप-जैसोंको शोभा नहीं देता। मेरी ओर देखिये—मैं तो गीदड़की कष्टप्रद पशुयोनिमें हूँ। आपसे अधिक दुःख हमें होता है, किंतु फिर भी मैं जीवित रहना चाहता हूँ। फिर आप तो तपस्वी होते हुए भी धनकी लालसाके वशीभूत हो और मान-अपमानका ख़याल करते हुए आत्महत्या करना चाहते हैं, यह ठीक नहीं है। आत्महत्या महान् पाप है। धनसे कभी किसीको संतोष न हुआ है, न कभी होगा। अतः इस तृष्णाको सर्वथा छोड़ देना चाहिये। मनुष्य धनी होनेपर राज्य पाना चाहते हैं, राज्यसे देवत्वकी इच्छा करते हैं और फिर देवत्वसे इन्द्रपद प्राप्त करना चाहते हैं। यह धनकी अतृप्त परम्परा है, इससे प्रभावित हो आपको खिन्न नहीं होना चाहिये। आपके लिये स्वाध्याय, अग्निहोत्र, सत्यपालन, इन्द्रियसंयम आदि मुख्य कर्तव्य हैं। इसलिये आप अपने कर्तव्यका ही पालन करें।

यह सुनकर काश्यप ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ कि अहो! यह गीदड़ होकर भी तत्त्वज्ञानकी बात बतला रहा है, मालूम पड़ता है यह कोई सिद्ध ऋषि है। फिर उन्होंने ध्यान लगाकर देखा तो उन्हें गीदड़के स्थानपर शचीपति इन्द्र दिखलायी पड़े।

काश्यप ब्राह्मणने उनका पूजन किया और उनकी आज्ञा स्वीकारकर वे पुनः तपस्यामें संलग्न हो गये।

(महा०, शान्ति० १८०)

( २ )

## अपमान किसीका भी न करे

दक्षिणमें समुद्रके तटपर एक टिट्टिभ-दम्पति रहा करते थे। प्रसव-काल समीप देखकर टिट्टिभीने कहा—प्राणनाथ! मेरे प्रसवका समय निकट आ गया है, अतः कोई ऐसा सुरक्षित स्थान ढूँढ़ना चाहिये, जहाँ सुखपूर्वक अण्डोंको रखा जा सके। टिट्टिभने कहा—कल्याणि! यह समुद्र-तट अत्यन्त रमणीय है, यहीं प्रसव करो। टिट्टिभीने कहा—स्वामिन्! समुद्रकी ये लहरें तो बड़े-बड़े मदोन्मत्त गजराजों-तकको अपने गर्भमें खींच ले जाती हैं, फिर हम क्षुद्र पक्षियोंकी क्या बिसात! टिट्टिभने कहा—प्रिये! संसारमें सबकी मर्यादा है, समुद्रकी भी अपनी एक मर्यादा है; यदि वह उसका अतिक्रमण करके हमें क्षुद्र समझ हमारे अङ्गोंको बहा ले जायगा तो उसे उसका दण्ड भुगतना पड़ेगा, तुम भय न करो। समुद्रने ये सब बातें सुन लीं।

टिट्टिभके आश्वासन देनेपर टिट्टिभीने समुद्रके किनारे सुरक्षित स्थानपर अण्डे दिये। एक दिन जब टिट्टिभ-दम्पति भोजनकी खोजमें कहीं बाहर चले गये तो समुद्रने उनके अण्डोंका अपहरण कर लिया। वापस लौटनेपर अण्डोंको न देख टिट्टिभी रोने लगी। टिट्टिभने कहा—प्रिये! तुम चिन्ता न करो, समुद्रको इसका फल भुगतना पड़ेगा। यह कहकर टिट्टिभने पक्षिराज गरुडके पास जाकर प्रार्थना की—महाराज! समुद्र हमें क्षुद्र प्राणी समझकर अपमानित करता है, उसने मेरी टिट्टिभीके अण्डोंको चुरा लिया है। आप हम सब पक्षियोंके स्वामी हैं और समर्थ हैं, अतः आपको समुद्रकी इस धृष्टताके लिये उसे दण्ड देना चाहिये। गरुडने कहा—टिट्टिभ! समुद्रको भगवान् श्रीहरिका आश्रय प्राप्त है, अतः मैं उन्हीं श्रीहरिसे ही उसे दण्ड दिलाऊँगा। यह कहकर गरुड टिट्टिभको लेकर भगवान् नारायणके पास गये और समुद्रद्वारा की गयी धृष्टताकी बात उनसे कही। तब भगवान्‌की आज्ञा मानकर भयभीत समुद्रने टिट्टिभीके अण्डे वापस कर दिये।

अतः किसी क्षुद्र जीव-जन्तुका भी अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक प्राणीमें श्रीहरिका वास है। वे ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। किसीका भी अपमान उस जीवमें स्थित नारायणका ही अपमान है। इससे व्यक्तिको दण्डका भागी बनना पड़ता है।

(हितोपदेश, सुहृद्भेद)

विविध नीतियोंके आदर्श चरित्र—

# दान-नीतिके आदर्श—राजा हर्षवर्धन

तीर्थराज प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके संगमपर पता नहीं कबसे जब बृहस्पति मिथुन राशिपर आते हैं (प्राय: बारहवें वर्ष), तब कुम्भ-महापर्व होता है। उससे आधे कालमें अर्धकुम्भका पर्व माना जाता है। यद्यपि कुम्भ-महापर्व भारतमें चार स्थानोंमें पड़ता है, किंतु अर्धकुम्भपर्व प्रयागमें ही माना जाता है। इस प्रकार प्रति छठे वर्ष प्रयागमें कुम्भ अथवा अर्धकुम्भका पर्व पड़ जाता है।

भारतसम्राट् शिलादित्य हर्षवर्धन इस कुम्भ या अर्धकुम्भपर्वके आनेपर प्रयाग अवश्य आते थे। सम्राट्की ओरसे मोक्षसभाका आयोजन होता था। सनातन-धर्मी विद्वान् साधु तो आते ही थे, देशके सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् तथा भिक्षु भी आते थे। सम्राट् सबके ठहरने और भोजनादिकी व्यवस्था करते थे। एक महीने निरन्तर धर्मचर्चा चलती थी।

यह स्मरण रखनेकी बात है कि हर्षवर्धनने अपनेको कभी राजा नहीं माना। वे अपनेको अपनी बहिन राज्यश्रीका प्रतिनिधि ही मानते थे। तपस्विनी राज्यश्रीका कहना था—'प्रयागकी यह पावन भूमि तो महादानकी भूमि है। इसमेंसे कुछ भी घर लौटा ले जाना अत्यन्त अनुचित है।'

वह मोक्षसभाका प्रथम आयोजन था। हर्षने सर्वस्व-दानकी घोषणा कर दी थी। राज्यश्रीने भी सब दान कर दिया था। धन, रत्न, आभूषण, वस्त्र, वाहन आदि सब कुछ दान कर दिया गया। शरीरपरके पहननेके वस्त्रतक राज्यश्रीने सेवकोंको दे दिये। परंतु उसे तब चौंकना पड़ा जब उसके भाई सम्राट् हर्ष केवल धोती पहने, बिना उत्तरीयके अनाभरण उसके सम्मुख आये और बोले—'बहिन! हर्ष तुम्हारा राज्य-सेवक है। यह अधोवस्त्र नापितको दे देनेका संकल्प कर चुका है। अपने इस सेवकको एक वस्त्र नहीं दोगी?'

राज्यश्रीके नेत्र भर आये। उसके शरीरपर भी एकमात्र साड़ी बची थी। उसने ढूँढ़ा तो एक पुराना वस्त्र शिबिरमें पड़ा मिल गया। वह इसलिये बच गया था कि फटकर चिथड़ा हो चुका था। किसीको देनेयोग्य नहीं रहा था। वह चिथड़ा हर्षने ले लिया और उसे लपेटकर धोती नापितको दे दी।

इसके पश्चात् तो यह परम्परा ही बन गयी। प्रति छठे वर्ष हर्षवर्धन सर्वस्व-दान करते थे और बहिन राज्यश्रीसे माँगकर एक फटा चिथड़ा लपेटते थे। कटिमें वह चिथड़ा लपेटे भारतका सम्राट् नग्नदेह कुम्भकी भरी भीड़में पैदल बहिनके साथ विदा होता था। उस महादानीकी शोभा क्या सुरोंको भी स्वप्नमें मिलनी शक्य है?

वह चिथड़ा भी हर्षके पास रह नहीं पाता था। प्रयागके उस संगम-क्षेत्रसे बाहर निकलते ही कोई-न-कोई नरेश आगे आ जाता—'सम्राट्! आपने सर्वस्व-दान किया है। आपका यह कटिवस्त्र पानेकी कामना लिये आया है यह आपका सेवक!'

राजाओंके स्नेहपूर्वक मिले उपहार तो सम्राट्को स्वीकार करने ही थे। वह कटिवस्त्र जिसे मिलता, वह अपनेको कृतार्थ एवं परम सम्मानित मानता।

# हमारा महान् शत्रु—आलस्य

( श्रीअगरचन्दजी नाहटा )

**आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।**

अर्थात् मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु उसके शरीरमें स्थित आलस्य ही है। अपने इस जीवनमें भी हम प्रतिपल यह अनुभव करते हैं कि किसी भी कार्यकी सिद्धिमें आलस्य ही सबसे महान् बाधक है। उत्साहकी मन्दतासे प्रकृतिमें शिथिलता आती है। हमारे बहुत-से कार्य आलस्यवश सम्पन्न नहीं हो पाते। दो मिनटके कार्यके लिये आलसी व्यक्ति 'फिर करूँगा, कल करूँगा' करते-करते लम्बा समय यों ही बिता देता है।

हमारे जीवनका अधिकांश समय आलस्यमें ही बीत जाता है; यदि हम उतने समयतक कार्य-तत्पर रहें तो कल्पनासे अधिक कार्यकी सिद्धि हो सकती है। इसका अनुभव हम कार्यमें संलग्न रहनेवाले व्यक्तिके क्रियाकलापोंद्वारा भलीभाँति कर सकते हैं। बहुत बार हमें यह आश्चर्य होता है कि एक ही व्यक्ति इतना काम कब और कैसे कर लेता है। जो काम अभी हो सकता है, उसे घंटों बाद करनेकी मनोवृत्ति आलस्यकी ही निशानी है। एक-एक काम हाथमें लिया और करते चले गये तो बहुत-से कार्य हो जायँगे; पर बहुत-से काम एक साथ लेनेसे किसे पहले किया जाय, इसी उधेड़बुनमें समय बीत जाता है, एक भी काम पूर्णतया नहीं हो पाता। संत कबीरकी यह चेतावनी चिर ध्यातव्य है—

**काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब।**
**पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब॥**

दूसरी बात यह ध्यानमें रखनी है कि एक साथ अधिक कार्य न लिये जायँ; क्योंकि ऐसी स्थितिमें किसी भी कार्यमें पूरा मनोयोग और उत्साह न रहनेसे सफलता नहीं मिल सकेगी। अतः एक-एक कार्य किया जाय; अन्यथा सभी कार्य अधूरे रह जायँगे और किसी भी कार्यका फल नहीं मिल सकता। आलसी व्यक्ति पहले तो कार्य आरम्भ ही नहीं करता; यदि प्रारम्भ भी करता है तो उसे अधूरा छोड़ देता है।

जैन-ग्रन्थोंमें कार्योंमें बाधा देनेवाली तेरह बातोंको कठिनाइयोंकी संज्ञा दी गयी है। उसमें सर्वप्रथम 'आलस्य' ही है। बहुत बार बना-बनाया काम तनिक-से आलस्यके कारण ही बिगड़ जाता है। प्रातःकाल निद्रा भंग हो जाती है, पर आलस्यवश ही हम उठकर काममें नहीं लगते। इधर-उधर उलट-पलट करते-करते कामका समय खो बैठते हैं। जो व्यक्ति उठते ही काममें लग जाता है, वह हमारे उठनेके पहले ही बहुत-से काम कर लेता है। दिनमें भी आलसी विचारमें ही रह जाता है और आलस्यरहित व्यक्ति कमाई कर लेता है। अतः प्रत्येक समय किसी-न-किसी कार्यमें लगे रहना चाहिये। कहावत भी है कि *'ठाले बेगार भली।'*

मानव-जीवन दुर्लभ होनेके कारण उसका प्रत्येक क्षण अत्यन्त मूल्यवान् है। जो समय चला जाता है, वह वापस नहीं आता। प्रतिक्षण आयु क्षीण हो रही है। न मालूम जीवन-दीप कब बुझ जाय। अतः क्षणमात्र भी प्रमाद न करनेका उपदेश भगवान् महावीरने दिया है। महामना गौतम गणधरको सम्बोधित करते हुए उन्होंने उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है—'**समयं गोयम मा पमावार**' अर्थात् 'हे गौतम! क्षणमात्रका भी प्रमाद न कर।'

जैन-दर्शनमें प्रमाद* निकम्मेपनके ही अर्थमें नहीं है, परंतु समस्त पापाचरणके आसेवनके अर्थमें भी है। पापाचरण करके जीवनके बहुमूल्य समयको व्यर्थ न गँवाइये। आलसी आत्मशक्तिका उपयोग नहीं करता तो पापाचारी उसका दुरुपयोग करता है। दोनों ही ठीक नहीं।

कई लोग कार्योंकी अधिकतासे घबराते हैं और आराम नहीं मिलनेसे स्वास्थ्य नष्ट होनेकी आशङ्का करते हैं। पर आलस्यके त्यागद्वारा कार्यशक्ति बहुत बढ़ायी जा सकती है। अतः अपनेको अधिकाधिक कार्य कर सकनेके उपयुक्त बनानेका अभ्यास डालना चाहिये। शरीर-मन आदि जैसा अभ्यास किया जाता है, वैसे ही बन जाते हैं। कार्य करते रहनेसे शक्तियोंका विकास होता है।

---

* 'प्रमाद' का अर्थ किया गया है करनेयोग्य कार्यको—वैध कर्तव्यको न करना और न करनेयोग्य कर्मोंको करना।

आत्मा अनन्त शक्तिका भण्डार है, पर उसका भान न होनेसे ही हम उस शक्तिका अनुभव नहीं कर पाते। बहुत बार उससे काम न लेनेके कारण ही हमारी वह शक्ति कुण्ठित हो जाती है। विधिवत् उपयोग करते रहनेसे वह क्रमशः बढ़ती रहती है। हम दो-चार घंटे शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक श्रम करके थक जाते हैं एवं विश्रामके लिये आतुर हो उठते हैं; पर अभ्यासके बलपर जिन्होंने अपनी शक्तिको बढ़ा लिया है, वे पंद्रह-बीस घंटेतक काम करनेपर भी थकते नहीं। महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरूके कार्योंको देखिये—उनका प्रतिपल कार्यसंलग्न है। एक बार नेहरूजी सिलहट पधारे, तो उनके एक ही दिनमें १००—१५० मीलके भ्रमणके साथ १०—२० कार्यक्रम थे; उन्होंने किसीको असफल नहीं होने दिया था। उनके एक-एक मिनटका कार्यक्रम बँधा हुआ था, स्थान-स्थानपर भाषण देना पड़ता था। लोग उनकी ऐसी कार्यशक्ति देखकर दंग रह जाते थे। गाँधीजीको भी अधिक-से-अधिक काम करने पड़ते थे, पर वे सबको नियमितरूपसे करते रहते थे—सैकड़ों व्यक्तियोंसे मिलना, सबकी बातें सुनना तथा संतोषप्रद उत्तर देना, सैकड़ों व्यक्तियोंके पत्रोंका उत्तर देना और साथ ही 'हरिजन' आदिके लिये लेख लिखना, प्रवचन देना, रोगियोंको सँभालना, चरखा कातना आदि कार्य अच्छी तरह करना और टहलने भी जाना। फिर भी उनके सब काम समयपर निपट जाते थे। वे कभी भी आजका कार्य कलपर नहीं छोड़ते थे।

आलस्यके कारण ही हम अपनी अन्तर्हित शक्तियोंका अनुभव नहीं कर पाते और शक्तिका उपयोग न करके उसे कुण्ठित कर देते हैं। किसी भी यन्त्र और औजारका उपयोग करते हैं तो वह ठीक और तेज रहता है। सत्कर्मोंमें तो आलस्य तनिक भी न करे; क्योंकि '**श्रेयांसि बहुविघ्नानि**'—अच्छे कामोंमें बहुत विघ्न आते हैं। आलस्य असत् कार्योंमें कीजिये, जिससे आपमें सद्बुद्धि उत्पन्न हो और कोई भी बुरा कार्य आपसे होने ही न पाये।

जहाँतक हम पुरुषार्थ नहीं करते, वहींतक कार्य कठिन लगता है। पुरुषार्थके सामने असम्भव कुछ भी नहीं, सभी काम सरल हो जाते हैं। लम्बा रास्ता आलसीके लिये है, चलनेवालेके लिये तो वह ज्यों-ज्यों कदम बढ़ायेगा, रास्ता तय होता जायगा और उत्साह बढ़नेसे छोटा-सा प्रतीत होगा। अतः हम आलस्यरूपी शत्रुको अपने पास ही न फटकने दें—पुरुषार्थी बनें।

## 'भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई'

प्रेम भगति सुखदाई भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
भगतबछल प्रभु दीनदयाला सुख दीनो कियो नाथ निहाला,
ऐ री सखि दधि माखन मिसरी प्रीत की रीत निभाई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
बाबा नंद की नौ लख गैया कौन कमी री बाघर गुइया,
दीन दयाल प्रेम के पाँछे बिसर गये ठकुराई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
नंदलला जसुमति को प्यारो मनमोहन चितचोर हमारो,
साँची प्रीत के आगे करे नित जन सेवकाई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥
साँच कहूँ प्रभु जग उपजाओ सुर, नर, मुनि कोई पार न पाओ,
कहे 'बेताब' अरज मोरी सुनियो लाज राखो यदुराई।
भगतिवश, नाँचे कुँवर कन्हाई॥

—श्रीबेताब केवलारवी

# साधनोपयोगी पत्र

(१)

## चिन्ताका कारण—प्रभु-विश्वासमें कमी

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र प्राप्त हुआ। आपने पत्रमें जो बातें लिखी हैं, वे स्वाभाविक समस्याएँ हैं। भगवान्‌की कृपा सबपर है और निरन्तर है, परंतु प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवान्‌की कृपाका जो अनुभव करता है वही वास्तवमें भगवद्विश्वासी है। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियाँ अपने ही कर्मोंके अनुसार पाप और पुण्यके कारण आती हैं और ये टिकनेवाली नहीं होतीं। प्रतिकूल परिस्थिति जब आती है तो उसका प्रतिकार करते हुए धैर्यपूर्वक उसे सहन भी करना चाहिये तथा यह मानना चाहिये कि प्रभु हमारे पापोंको निवृत्त कर रहे हैं और हमें निर्मल बना रहे हैं। वास्तवमें यह उनकी कृपा ही है।

आपने चिन्ताकी बात लिखी, संसार तथा व्यवहारमें यद्यपि चिन्ता होना स्वाभाविक है, परंतु चिन्ताका मुख्य कारण है प्रभुविश्वासमें कमी। परिवारके सदस्योंको और अपने बाल-बच्चोंको जब हम अपना मानते हैं और उनमें ममता रहती है तो उनके प्रति चिन्ता रहना स्वाभाविक है। परंतु इन्हें प्रभुका मान लेनेपर धरोहर-रूपमें उनकी शिक्षा-दीक्षा, सेवा-शुश्रूषा अपना कर्तव्य समझकर करते रहनेपर हम चिन्तारहित हो सकते हैं। वास्तविकता भी यही है।

आपने लिखा—**'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'**। यहाँ बलका तात्पर्य आध्यात्मिक बलसे है शारीरिक बलसे नहीं। शास्त्रोक्त रीतिसे हम अपना जीवनयापन करेंगे तो आध्यात्मिक बल स्वतः बढ़ेगा।

आपने लिखा कि अन्तकालमें भगवान्‌के नामका स्मरण और चिन्तन कैसे हो सके—इसके लिये सबसे पहले तो आवश्यक है कि हम मानव-जीवनका परम उद्देश्य (भगवत्प्राप्ति) इसी जीवनमें सुदृढ़ कर लें—इसे निरन्तर ध्यानमें रखा जाय। उद्देश्यके सुदृढ़ होनेपर हमारे सभी क्रिया-कलाप भगवान्‌की प्राप्तिमें सहायक होंगे। इसके साथ ही **'मामनुस्मर युध्य च'** के अनुसार अपने शास्त्रों तथा संतोंने हम साधारण जीवोंके लिये एक अमोघ ओषधि बतायी है कि चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते—हर समय भगवन्नामका स्मरण-जप करते रहें। अन्तिम समयमें भगवत्स्मरण होगा या नहीं—इस बातकी चिन्ता न करके अपने कर्तव्यका पालन करते हुए स्वयंको प्रभुके शरणागत कर देना ही अपने कल्याणका परम साधन है।

आपने लिखा कि भगवान्‌की लीलाओंका ध्यान और चिन्तन करते समय संसार सामने आता है—इस बातकी परवाह न करते हुए यह भावना बनानी चाहिये कि मेरे तो केवल भगवान् हैं और मैं उन्हींका अंश हूँ। संसार अपना नहीं है और इसमें दिखायी पड़नेवाली बातें भी हमारी अपनी नहीं हैं, ये सब यहाँकी हैं और यहीं रह जायँगी, इसलिये इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरे अपने केवल प्रभु हैं और मेरा सम्बन्ध उन्हींसे है।

अपने यहाँ बहुत प्रकारके साधन हैं। वे सभी भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं। यथा—सत्संग, स्वाध्याय, नाम-जप, भजन-संकीर्तन, भगवान्‌की बाह्य-पूजा, मानसिक पूजा, लीला-चिन्तन, सेवा इत्यादि। एक साधनसे मन ऊबे तो दूसरा साधन शुरू किया जा सकता है।

आपने लिखा कि मैंने किसी सद्‌गुरुसे दीक्षा नहीं ली है। पारिवारिक संस्कारोंके अनुसार भगवान्‌का पूजन तथा शामको गीताका स्वाध्याय और मन्त्र-जप करता हूँ, यह बहुत अच्छी बात है। आजके समयमें यदि सद्‌गुरु उपलब्ध नहीं होते हैं तो श्रीकृष्णको अथवा सदाशिवको या श्रीहनुमान्‌जी आदि किन्हींको भी अपना सद्‌गुरु मान लेना चाहिये। इसके साथ ही किन्हीं एकके स्वरूपमें अपनी निष्ठा स्थापित कर उन्हें अपना इष्टदेव बना लेना चाहिये। उन प्रभुके साथ जो आपका सर्वप्रिय सम्बन्ध हो उसे स्थापित कर लेना चाहिये, जिससे उनके अपने बननेकी पूरी अनुभूति आपको हो सके। अपने इष्टदेवके नामका ही जप, ध्यान, चिन्तन और पूजन निरन्तर करना चाहिये।

जीवनमें कभी-कभी समस्याएँ, उलझनें और प्रतिकूलताएँ भी आती हैं, परंतु इनसे विचलित न होकर एकान्तमें अपने मनकी सारी बातें अपने प्रभुसे करनेपर वे अवश्य अपने शरणागत प्राणीको उबारते हैं और परिस्थितियोंको सहन करनेकी शक्ति भी प्रदान करते हैं। शेष भगवत्कृपा।

(२)

## मन, बुद्धि आदिके स्वरूप

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) अन्तःकरणमें जो मनन या संकल्प-विकल्प करनेकी वृत्ति है, उसीका नाम मन है। मन संशयात्मक होता है; फिर

उस संशय या संकल्प-विकल्पपर विचार करके किसी निश्चयपर पहुँचानेवाली जो वृत्ति है, उसे बुद्धि कहते हैं। बुद्धि विचारपूर्वक निर्णय देती है। आत्मा इन दोनों वृत्तियोंका साक्षी अथवा द्रष्टा है। वह मन और बुद्धि दोनोंके कार्योंको तटस्थ रहकर देखता है। उसीके सहज प्रकाशसे मन, बुद्धि अपने कार्यमें समर्थ होते हैं। आत्मा मनका भी मन और बुद्धिकी भी बुद्धि है। यदि मन और बुद्धिको आत्माका आश्रय न प्राप्त हो तो वे सत्ताशून्यकी भाँति हो जाते हैं, फिर तो वे कुछ नहीं कर सकते। यही इन तीनोंका अन्तर है।

(२) मन जिस कार्यके लिये आज्ञा देता है, उसमें उसका कुछ राग या द्वेष अवश्य रहता है। वह प्राय: ऐसी प्रेरणाएँ देता है, जिनसे उसकी इच्छा पूर्ण हो। विषयसेवन या भोगसंग्रहकी प्रेरणा मनके द्वारा ही प्राप्त होती है। वह रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—भोगोंके प्रति आसक्त होता है; अत: उनकी ओर वह आकृष्ट करना चाहता है। जीवको वह अपने पीछे चलाना चाहता है। किसी शत्रुसे बदला लेनेकी भावना भी मनमें होती है, अत: वैसे कार्य भी उसीकी प्रेरणासे होते हैं। इसमें द्वेष छिपा रहता है। राग और द्वेष ही काम और क्रोधके रूपमें परिणत होते हैं। इन्द्रिय, मन और बुद्धि—ये ही तीनों राग-द्वेष या काम-क्रोधके निवासस्थान हैं; अत: इनका प्रत्येक कार्य राग या द्वेषसे प्रेरित होता है। आत्मा इन सबसे ऊपर है, वह जबतक इनके मोहजालमें फँसकर अपने स्वरूपको भूला हुआ है, तभीतक मनके इशारेपर चलता है। 'मैं इन सबका स्वामी, शासक और इनसे सर्वथा विलक्षण हूँ। मैं सर्वत्र व्यापक एवं नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप हूँ।' यह ज्ञान होते ही वह इन मन आदिका शासक हो जाता है; फिर तो ये ही आत्माके अनुशासनमें चलते हैं। विशुद्ध आत्मासे प्रेरित होकर जो कार्य होगा, उसमें राग-द्वेषकी गन्ध भी नहीं होगी। सबके प्रति मैत्री, दया, परोपकार, सेवा, भगवद्भजन, सत्सङ्ग तथा सत्कर्म आदिके भाव मनमें तभी जगते हैं जब विशुद्ध आत्माकी प्रेरणा होती है। मन, इन्द्रिय आदि जब आत्माके अधीन होते हैं, तब इनके द्वारा कोई अशुभ कर्म नहीं होता। थोड़ेमें इतना ही समझ लें कि सद्धर्म एवं सद्भावपूर्ण कार्योंके लिये प्रेरणा आत्मासे मिलती है और राग-द्वेषपूर्ण कार्योंकी प्रेरणा मनकी ओरसे प्राप्त होती है।

जो कर्म राग-द्वेषरहित और वशमें किये हुए मन-इन्द्रियोंसे होते हैं, उनसे प्रसाद—चित्तकी निर्मलता-प्रसन्नता या भगवान्‌की कृपा प्राप्त होती है और उससे समस्त दु:खोंका नाश हो जाता है। भगवान् कहते हैं—

**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।**
**आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥**
**प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।**

(गीता २। ६४-६५)

(३) विशुद्ध आत्माका नाम ही परमात्मा है। इनमें कोई भेद नहीं है। इस आत्मा या परमात्माका कभी पतन नहीं होता। जैसे घटाकाश या महाकाशमें कोई अन्तर नहीं। वैसे ही शरीरान्तर्यामी आत्मा और परमात्मामें भी कोई अन्तर नहीं। मन, प्राण और सूक्ष्म इन्द्रियोंका समुदाय सूक्ष्म शरीर कहलाता है। यह स्थूल शरीरके भीतर रहता है। इसीकी प्रेरणाके अनुसार स्थूल शरीरद्वारा क्रियाएँ होती हैं। इस सूक्ष्म शरीरके साथ तादात्म्य हुए आत्माको जीव कहते हैं। इसी सूक्ष्म शरीरमें राग-द्वेषमूलक प्रवृत्ति होती है; अत: उसीका पतन होता है। वही नरकमें और वही स्वर्गमें भी जाता है। उसीका जन्म और उसीकी मृत्यु होती है। इस प्रकार आत्मा जबतक इस सूक्ष्म शरीरको अपना स्वरूप मानता है, तभीतक उसके सुख-दु:खसे वह सुखी-दु:खी होता है और विविध योनियोंमें भटकता रहता है।

**पुरुष: प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।**
**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥**

'प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक समस्त पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका सङ्ग ही जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है।' उस सूक्ष्म शरीरके ही पतनका आरोप लोग अज्ञानवश आत्मापर करते हैं। क्या घड़ेमें रखी हुई कीचड़का लेप आकाशमें भी लग सकता है? इसी प्रकार सूक्ष्म शरीरके दोष आत्माको छू भी नहीं सकते हैं। अत: सूक्ष्म शरीर या उसका अभिमानी जीव पतित होता है, आत्मा या परमात्मा नहीं।

(४) आत्मा या परमात्मा अनादि और अनन्त हैं। जन्म लेता है सूक्ष्म शरीर और वही मरता भी है। अज्ञानवश लोग आत्मापर उसका आरोप करते हैं। मनुष्य जन्म लेता है, इससे आत्माका जन्म लेना कैसे सिद्ध हुआ? एक विशेष प्रकारके शरीरको मनुष्य कहते हैं। आत्माका शरीरसे क्या सम्बन्ध? सूक्ष्म शरीरके द्वारा जो शुभाशुभ कर्म सम्पादित होते हैं, उन्हींके फलस्वरूप उसको मनुष्य आदि जीवोंके स्थूल शरीर प्राप्त होते हैं। शेष भगवत्कृपा।

# व्रतोत्सव-पर्व

## कार्तिक कृष्णपक्ष (२२-१०-२००२ से ४-११-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनाङ्क | व्रतोत्सव-पर्व |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | भौम | अश्विनी | २२ अक्टूबर | कार्तिकमें दालका त्याग, अश्विनी नक्षत्र दिन ८-०७ बजेतक, अशून्यशयनव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ६-१७ बजे, तुलसीदलसे श्रीविष्णु-पूजन आरम्भ, सर्वार्थामृतसिद्धियोग दिन ८-०७ बजेतक |
| द्वितीया | बुध | भरणी | २३ " | वृषके चन्द्रमा सायं ४-५६ बजे, राष्ट्रिय कार्तिकमास, सर्वार्थसिद्धियोग दिन १०-३० बजेसे, भद्रा रात्रि शेष ४-३९ बजेसे |
| तृतीया | गुरु | कृत्तिका | २४ " | भद्रा सायं ५-२३ बजेतक, करवा चौथ, श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि ७-२५ बजे, चन्द्रार्घदान, स्वाती नक्षत्रके सूर्य रात्रि ९-५६ बजे (मध्यमावृष्टि), सायन वृश्चिक राशिके सूर्यकी संक्रान्ति दिन ८-५० बजे, यायिजययोग दिन १२-३५ बजेसे सायं ५-२३ बजेतक, तृतीया तिथि सायं ५-२३ बजेतक |
| चतुर्थी | शुक्र | रोहिणी | २५ " | मिथुनके चन्द्रमा रात्रि २-४६ बजे, दशरथ चतुर्थी (बंगाल), स्थायिजययोग दिन २-१३ बजेसे सायं ६-२३ बजेतक |
| पञ्चमी | शनि | मृगशिरा | २६ " | पञ्चमी तिथि सायं ६-५३ बजेतक, मृगशिरा नक्षत्र दिन ३-२१ बजेतक |
| षष्ठी | रवि | आर्द्रा | २७ " | यायिजययोग तथा त्रिपुष्करयोग सायं ६-५३ बजेसे, रवियोग सायं ४-०१ बजेसे, भद्रा सायं ६-५३ बजेसे |
| सप्तमी | सोम | पुनर्वसु | २८ " | भद्रा प्रातः ६-३७ बजेतक, कर्कके चन्द्रमा दिन १०-०८ बजे, अहोई अष्टमीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि १०-५२ बजे, रवियोग तथा यायिजययोग सायं ४-१० बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग |
| अष्टमी | भौम | पुष्य | २९ " | श्रीराधाष्टमीव्रत, सूर्योदयके समय मथुरा (श्रीराधाकुण्ड)-में स्नान, कराष्टमी (महाराष्ट्र), स्थायिजययोग दिन ३-५१ बजेतक तदुपरि सर्वार्थसिद्धियोग |
| नवमी | बुध | अश्लेषा | ३० " | सिंहके चन्द्रमा दिन ३-०९ बजे, नवमी तिथि दिन ३-५६ बजेतक, अश्लेषा नक्षत्र दिन ३-०९ बजेतक, सूर्योदय प्रातः ६-२६ बजे, सूर्यास्त सायं ५-३४ बजे, भद्रा रात्रि ३-०५ बजेसे |
| दशमी | गुरु | मघा | ३१ " | भद्रा दिन २-१२ बजेतक, मघा नक्षत्र दिन २-०७ बजेतक |
| एकादशी | शुक्र | पू०फा० | १ नवम्बर | कन्याके चन्द्रमा सायं ६-२४ बजे, रम्भा एकादशीव्रत (सबका), गोवत्स द्वादशीव्रत (प्रदोषव्यापिनी), एकादशी तिथि दिन १२-१० बजेतक |
| द्वादशी | शनि | उ०फा० | २ " | द्वादशी तिथि दिन ९-५७ बजेतक, शनिप्रदोषव्रत, पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंके लिये व्रतका आरम्भ, अकाल मृत्युके निवारणार्थ सायंकाल घरके बाहर यमराजके लिये दीप-दान, धनतेरस, धनवन्तरि-जयन्ती, कामेश्वरी-जयन्ती, त्रिपुष्करयोग दिन ९-५७ बजेतक तदुपरि यायिजययोग |
| त्रयोदशी | रवि | हस्त | ३ " | तुलाके चन्द्रमा रात्रि ८-४७ बजे, मासशिवरात्रिव्रत, नरक चतुर्दशीव्रत, चन्द्रोदय रात्रि शेष ४-१० बजे, श्रीहनुमज्जन्म (प्रदोष), यायिजययोग प्रातः ७-३६ बजेतक, सर्वार्थसिद्धियोग दिन ९-३८ बजेतक, भद्रा प्रातः ७-३७ बजेसे सायं ६-२४ बजेतक |
| चतुर्दशी | चतुर्दशी | तिथिका क्षय | | त्रयोदशी तिथि प्रातः ७-३६ बजेतक तदुपरि चतुर्दशी तिथि रात्रि शेष ५-१२ बजेतक |
| अमावास्या | सोम | चित्रा | ४ " | अमावास्या तिथि रात्रि २-४९ बजेतक, सोमवती अमावास्या, स्नान-दान-श्राद्ध आदिकी अमावास्या, दीपावली, प्रातः श्रीहनुमान्जीका दर्शन-पूजन, लक्ष्मी-इन्द्र-कुबेर आदिकी पूजा, सायंकाल दीप-दान, आधी रातमें महाकालीपूजा, शेष रात्रिमें दरिद्रानिःसारण, महावीर निर्वाण दिवस (जैन), शुक्रोदय पूर्वमें सायं ५-३१ बजे, चित्रा नक्षत्र प्रातः ७-५६ बजेतक तदुपरि स्वाती नक्षत्र प्रातः ६-१८ बजेतक |

## कार्तिक शुक्लपक्ष (५-११-२००२ से १९-११-२००२ तक) सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु

| तिथि | वार | नक्षत्र | दिनाङ्क | व्रतोत्सव-पर्व |
|---|---|---|---|---|
| प्रतिपदा | भौम | विशाखा | ५ नवम्बर | वृश्चिकके चन्द्रमा रात्रि ११-१२ बजे, अन्नकूट, काशीसे अन्यत्र गोवर्धनपूजा, बलिप्रतिपत्, रात्रिमें बलिपूजा, त्रिपुष्करयोग रात्रि १२-३७ बजेसे रात्रि शेष ४-४९ बजेतक |
| द्वितीया | बुध | अनुराधा | ६ " | चन्द्रदर्शन, काशीमें गोवर्धनपूजा, यमद्वितीया, भ्रातृद्वितीया (भइया दूज), बहनके घर भोजन, वस्त्र आदिके द्वारा बहनकी पूजा, दूत चित्रगुप्तके साथ यमपूजा, दोपहरमें यमुनास्नान, मत्स्याधार (दवातपूजा) बिहार, यमपञ्चक निवृत्ति, विशाखा नक्षत्रके सूर्य रात्रि शेष ५-०९ बजे, रवियोग रात्रि ३-३३ बजेसे प्रातः ६-३८ बजेतक |
| तृतीया | गुरु | ज्येष्ठा | ७ " | धनुके चन्द्रमा रात्रि २-३२ बजे, शुक्रबालत्व निवृत्ति (आवश्यक) सायं ५-३१ बजे, रवियोग रात्रि २-३३ बजेसे |
| चतुर्थी | शुक्र | मूल | ८ " | रवियोग रात्रि १-५२ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, श्रीसूर्यषष्ठीव्रतारम्भ (तीन दिनतक), नागचतुर्थी, भद्रा दिन ८-०७ बजेसे रात्रि ७-२३ बजेतक |
| पञ्चमी | शनि | पू०षा० | ९ " | श्रीसूर्यषष्ठीव्रत (दूसरा दिन), ज्ञानपञ्चमी (जैन), रवियोग रात्रि १-३८ बजेसे |
| षष्ठी | रवि | उ०षा० | १० " | मकरके चन्द्रमा प्रातः ७-४१ बजे, श्रीसूर्यषष्ठीव्रत (बिहारमें प्रसिद्ध), सायंकालका अर्घ्य, रात्रि शेष अरुणोदयके समय दूसरा अर्घ्यका दान, स्कन्दषष्ठी (तमिलनाडु), रवियोग तथा सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि १-५१ बजेतक, यायिजययोग सायं ५-४९ बजेसे रात्रि १-५१ बजेतक, षष्ठी तिथि सायं ५-४८ बजेतक |
| सप्तमी | सोम | श्रवण | ११ " | सूर्यषष्ठीव्रतका पारण, कल्पादि सप्तमी, सर्वार्थसिद्धियोग रात्रि २-३४ बजेतक, भद्रा सायं ५-४६ बजेसे रात्रि शेष ५-५९ बजेतक |
| अष्टमी | भौम | धनिष्ठा | १२ " | कुम्भके चन्द्रमा दिन ३-११ बजे, गोपाष्टमी सायंकाल गौओंका पूजन, अष्टमी तिथि सायं ६-१३ बजेतक तदुपरि नवमी तिथि, नवमी तिथिमें अयोध्या और मथुराकी परिक्रमा सायं ६-१४ बजेसे, रवियोग रात्रि ३-४९ बजेसे, पञ्चक आरम्भ दिन ३-११ बजेसे |
| नवमी | बुध | शतभिषा | १३ " | अक्षय नवमी, अयोध्या और मथुराकी परिक्रमा रात्रि ७-१२ बजेतक, श्रीजगद्धात्रीपूजा, त्रिपुरसुन्दरीपूजा (बंगाल), दुर्लभ सन्धिकरयोग रात्रि ७-१३ बजेसे रात्रि शेष ५-२० बजेतक, शतभिषा नक्षत्र रात्रि शेष ५-२९ बजेतक |
| दशमी | गुरु | पू०भा० | १४ " | मीनके चन्द्रमा रात्रि १-०३ बजे, मृत्युबाण रात्रि ३-३० बजेसे, रवियोग प्रातः ६-३७ बजेसे सायं ५-२४ बजेतक |
| एकादशी | शुक्र | पू०भा० | १५ " | मृत्युबाण रात्रि ३-०७ बजेतक, प्रबोधिनी एकादशीव्रत (सबका), ईखके रसका प्राशन, भद्राके बाद अर्थात् रात्रि १०-२७ बजेसे प्रबोधनोत्सव, भीष्मपञ्चक आरम्भ, भद्रा दिन ९-३३ बजेसे रात्रि १०-२६ बजेतक, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र प्रातः ७-३६ बजेतक |
| द्वादशी | शनि | उ०भा० | १६ " | एकादशीव्रतका पारण दिन १० बजेतक, चातुर्मास्यव्रत समाप्त, द्विदलदान, सायन वृश्चिकके सूर्यकी संक्रान्ति रात्रि २-५७ बजे (दूसरे दिन पुण्यकाल), 'हेमन्त-ऋतु', कार्तिक पूजा (बंगाल) |
| त्रयोदशी | रवि | रेवती | १७ " | मेषके चन्द्रमा दिन १२-३६ बजे, सौरमार्गशीर्षमासारम्भ, प्रदोषव्रत, संक्रान्तिजन्य पुण्यकाल दोपहरतक, पञ्चक समाप्त दिन १२-३६ बजे |
| चतुर्दशी | सोम | अश्विनी | १८ " | श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत, श्रीकाशीविश्वनाथ प्रतिष्ठा-दिन, चौमासी चौदस (जैन), भद्रा रात्रि शेष ४-५४ बजेसे |
| पूर्णिमा | भौम | भरणी | १९ " | भद्रा सायं ५-३७ बजेतक, वृषके चन्द्रमा रात्रि १२-१० बजे, स्नान, दान, व्रत, आदिकी पूर्णिमा, गुरुनानक-जयन्ती, कार्तिकेयदर्शन, पुष्करमेला, रथयात्रा (जैन), भीष्मपञ्चक निवृत्ति, कार्तिक व्रत-यम-नियम आदि समाप्त। |

# श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

*(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५८ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०५९ तक रही है)*

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ४८, ८०, १०, ००० (अड़तालीस करोड़, अस्सी लाख, दस हजार)

(ख) नाम-संख्या ७, ८०, ८१, ६०, ००० (सात अरब, अस्सी करोड़, इक्यासी लाख, साठ हजार)

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर अमेरिका, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

## स्थानोंके नाम—

अंजड़, अंजनवनी, अंता, अंधारकांच, अंधेरी, अंबाजोगाई, अंबाला छावनी, अंबाला शहर, अंबिकापुर, अकबरपुर, अकलतरा, अकलैरा, अकांवाली, अकोट, अकोदड़ा, अकोदिया, अगसौली, अगस्तमुनि, अगुआनी, अगोगी, अगौस, अचरोल, अचलपुर सिटी, अचौसा, अजनास, अजबपुरा, अजमतपुर, अजमेर, अजीतपुर, अथाईखेड़ा, अधोया, अनन्तपुर, अनूपपुर, अमगवाँ, अमझोर, अमनौर, अमरपुर कोंडला, अमरपुरा, अमरा, अमराई-नवादा, अमरोहा, अमायन, अमिला (नवकापुरा), अमिलिया, अमृतपुर, अमृतसर, अमौली, अरई, अरड़का, अरनेठा, अरनोदा, अरन्याँकलाँ, अरर, अररिया आर०एस०, अरिंकन (सरैया), अरैला, अरोली, अर्कठिबरिया, अर्जुनपुर, अलकापुरी, अलवर, अलिपुरा, अलीगढ़, अलीपुर, अलीसरिया, अल्मोड़ा, अशोकनगर, असदपुर, असनावर, अहमदाबाद, अहिरुपुर, अहेरी, आँधी, आँवला, आऊबा, आकोदा, आगरा, आगरी (गणेश्वर), आटरगा, आजमगढ़, आजमपकरिया, आदर्शचवा, आदीपुर, आनन्दनगर (घोरेप), आनन्दनगर (फरेंदा), आभानेरी, आमगाँवबड़ा, आमामुडा, आमेट, आरा, आरामबाग, आर्वी, आलाउमरोद, आवाँ, आष्टा, आसनकुंडिया, आसी, आसैर, इंगोहटा, इंदवार, इंदवे, इंदौर, इगतपुरी, इचलकरंजी, इछापर, इज्जतनगर, इटवा, इटही, इटावा, इमामनगर (शिवमन्दिर टोला), इरोड, इलाहाबाद, इसुआ, इस्लामपुर, ईछापुरी, ईटालीखेड़ा (रामनगर), ईटों, ईशाकचक, ईशागढ़, ईश्वरनगर, उछटी, उजैनीकलाँ, उज्जैन, उटकमंड, उत्तरपाड़ा, उदगवाँ, उदगीर, उदयपुर, उदयाखेड़ी, उन्हैल, उपरदाहा, उमरगा, उमरहा, उमरिया, उमरियापान, उरई, उरतुम, उस्मानाबाद, ऊँचिया, ऊँझा, ऊगू, ऊदपुर, ऊन, ऊना, ऊसरी, एतला, ऐंचाया, ओझापुरा, ओड़ेकेरा, ओबरा, औरंगाबाद, औरदा, औराही मोतीनगर, औरेई, औरैया, कंदकुर्ती, कंहौली, ककराला, ककरिया, कचंदा, कटक, कटघरी (बाड़ापारा), कटनी, कटरा, कटरा सलेहा, कटिहार, कठार, कठूया, कनानखर्क, कन्नौज, कपरपुरा, कप्तानगंज, कबिलपुर, कबूलपुर, कमलेवगला, कमासिन, कमोल, करजोदा, करटाह, करनमेया, करमाला, करम्मर, करवाड़, करसौत, करीमुद्दीनपुर, करेली, करौली, कर्वी, कलमेश्वर, कवर्धा, कशह, कसरावद, कसरावाँ, कसहा (पूर्व), कसोलर, कसौली, कस्बा शहर, काँके, काँगड़ा, काँगू, काँटाबाँजी, काँडे (देवीधुरा), काँदी, काँपा, काँसबहाल, काचरी, काछवा, काजली, काटोल, काठगोदाम, काठमाण्डू (नेपाल), कानपुर, कानिटोला, कामता, कामदेवपुर, कारंजा (रम०), कालपी, कालाझर, कालाडेरा, कालियागंज, कालूखांण, काशीपुर, कास्की (नेपाल), किरिबुरू टाउनशिप, किलोदा, किसगो पाण्डेडीह, कुंजी (भादरा), कुंडलपुर, कुंभराज,

कुंवरपुर, कुंवारिया, कुआहेड़ी, कुचामन सिटी, कुटिलिया, कुड़वार, कुनिहार, कुमले नगला, कुमाल्डीपैनो, कुम्हेर, कुरकुरी, कुरदा, कुरदा बाजार, कुरमाली, कुरवाई, कुरुक्षेत्र, कुलपटांगा, कुलियारा, कुल्लू, कुसैला, कृष्णनगर, केकड़ी, केरमेली, केवलबीघा, केसिंगा, कैथल, कैथी, कैनखोला, कैलारस, कोंडागाँव, कोटखानदा, कोटहा, कोटा, कोठी, कोडलहंगरमा, कोड़ातराई, कोड़ामार, कोडिया, कोदंडा, कोन्नगर, कोमना, कोयलादेवा, कोरबा, कोरोराघवपुर, कोलकाता, कोलहंटा-पटोरी, कोहिना, कौड़ीहार, कौहाकुड़ा (पिथौरा), खंडवा, खंभात, खकसीस, खगौल, खजूरी, खजूरीखास, खजूरी रूंडा, खटौराखुर्द, खड़गपुर, खड़हरा, खड़ात-तरतोली, खनीपुरा, खम्मम, खरकड़ीकलाँ, खरगोन, खरौदनगर (तिवारीपारा), खवासपुरा, खाईखेड़ी, खारीजामा, खारुपेटिया, खालवागाँव, खितौली, खिरनी, खिरिया बुजुर्ग (बम्हौरी), खिलचीपुर, खिवान्दी, खींवसर, खुँटपला, खुड़ीमोठ, खुरसीपार, खुरहंड रेलवे स्टेशन, खुरहानमिलिक, खूँटलिया, खूँटापाली, खेडका-गुजर, खेड़ापुर, खेड़ी, खेडी (खींवसी), खेतिया, खेमादेई, खेरली, खेलदेशपांडे, खैरखाँ, खैरथल, खैरथल (छाछरो), खैराचातर, खोक्सा, खोडी-टिहरी-गढ़वाल, खोपा, खोलीघाट-मुवाणा, खोल्सी (नेपाल), खौड, खौना, ख्यामई, गंगधार, गंगाखेड, गंगापुर सिटी, गंगौर, गजनेरगढ़ी, गड़सा, गढ़ उमरिया, गढ़बसई, गढ़सान, गढ़िया, गढ़ूका (मोंठ), गणकोट, गदरपुर, गदाईपुर, गनिपारी, गनेरी, गम्हरिया, गम्हरियाखुर्द, गया, गरनियाँ, गरसाहड़, गरोठ, गरौठ, गल्लाटोला, गहासाँड़, गांटोक, गाँधीनगर वलथरवा, गागोरनी (जीरापुर), गाजियाबाद, गाजीपुर, गाडरवारा, गाड़ाटेल, गायत्री निकुंज (नयापुरवा), गिरिजास्थान, गिरीडीह, गीदड़बाहा, गुंटूर, गुड़गाँव, गुड़ाकलाँ, गुड़ासूरसिंह, गुढ़ाकटला, गुतासी, गुतुरमा, गुमानीवाला, गुराड़ियाजोगा, गुलबर्गा, गुलाना, गूठगरसाड़ी, गोंडल, गोगराबस्ती, गोड़हिया नं० १, गोपालगंज, गोबरौरा, गोरखपुर, गोला-गोकर्णनाथ, गोलाघाट, गोवडीहा, गोविंदगढ़, गोविंदपुर, गोविंदपुर (तिवारीनवाला), गौरा, गौरा-बगनहा, गौल, ग्वालियर, घगोंट, घड़सीकनैता, घाटलोदिया, घाटाबिल्लोद, घाड़, घिंगोरुकोट (देवीधुरा), घुंसी, घुघली, घुटकूनवापारा, घुटनूनवापारा, घोड़ासदाँता, घोड़ेगाँव, घोसरामा, घौघरी (बम्हौरी देवपुर), चंगईपुर, चंडीगढ़, चंडेश्वर, चंदखुरी, चंदनकियारी, चंदनबिरही, चंदला, चंदेरी, चंद्रकुटीर हल्द्वानी, चंद्रपुर, चंद्रहटी, चंपखुरी, चंपावत, चंबा, चकमदारी, चकवाड़ा, चकसिगार, चक्रधरपुर, चखियारा, चटोल, चतरपुरा, चतुरताई, चनावग, चनौर, चमरौला, चमाला, चरखीदादरी, चरपोखरी, चलाखु टोल साँखु (नेपाल), चाँचौड़ा, चाँदपाली, चाँदपुराकलाँ, चाँदरानी (मानिकपुर), चाँदाडीह, चाईबासा, चारौत, चिंचोली, चिचोली, चिटगुप्पा, चितनगला, चितभवन, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिरई डोंगरी, चिरकुंडा, चिरचारी, चिराखान, चिलौली, चीपलाटा, चुखियारा, चुरिहारपुर, चेन्नई, चैनपुर, चैसार-मथुरा बाजार, चौक, चौखुटिया गनाई, चौटलाय, चौडागाँव, चौबयाना, चौली, छतरपुर, छपड़ा-धरमपुर-जदू, छपरा, छातना, छापड़ा, छापर, छिंदवाड़ा, छिउलहा, छिछोर, छिटेपुर, छींच, छोटालांबा, छोटी कसरावद, छोटी खाटू, जंगबहादुरगंज, जकड़पुरा (वृन्दावनटोला), जगतपुरा, जगदलपुर, जगदीशपुर, जगदीशपुर बघनगरी, जगदेवपुर, जगाधरी, जड़वा, जनकपुर, जनोटी पालड़ी, जबलपुर, जमुरवाँ (बसकटा), जमोड़ी-सेंधव, जम्मू, जयन्त, जयनगर, जयपुर, जरुड, जरौल, जरौली, जलगाँव, जलपाईगुड़ी, जलसैन, जलहल-कुकुरमुड़ा, जलाड़ी, जलालपुर बाजार, जवल, जवाहरसागर (कोटाडेम), जसरासर, जसवन्तगढ़, जसो, जहरमऊ, जहाँगीरपुर, जहाँगीराबाद, जहीराबाद, जाँता, जाखपन्त, जाखल, जाजपुर रोड, जाजोता, जानपुर (रानी नवादा), जानेफल, जामखेड़, जामपाली (छोटे), जालंधर, जालना, जावरा, जावली, जियाराम राघोपुर, जुलवानिया, जूना लखनपुर, जेवरा, जैतपुर (महोबा), जैतपुरा, जैतारण, जैपोर, जैसलमेर, जोजवा, जोधपुर, जोरी, जोलदापका, जोहाङ्ग, ज्वालापुर, झाँसी, झागरया, झालरापाटन, झिंगुरदा, झिंझाना, झिकटिया, झिकटिया-पोखरीपुर, झुँझुनू, झूँथरी, झूँसी, झूलाघाट, झोथराखेड़ा, टांट, टिकरिया (लाला), टिक्कर, टिलहार, टीकमगढ़, टी०पी० वनम्, टुंडी, टूडंला, टेंटरा, टेकापार, टेघरा, टेमरा, टेमाभेला, टोक, टोका, टोरोण्टो (कनाडा), टोला शिवनराय, ठंडोल, ठकठौलिया-शाहगंज, डकाचा, डबरेड़ा, डमक, डहरिया, डाबरा, डाबराक्षेत्रपाल, डाबोक, डिंगरी शाल्यो, डिंडौरी, डिगसारी, डिडवाड़ी, डिडवाना, डुगली, डुमरिया, डूँगरपुर,

डूँडलौद, डुमरियागंज, डुमाईगढ़, डेढ़गाँवा, डेलपुरा, डोंकर परासिया, डोंबिवली, डोकरबुड़ा (घरघोड़ा), डौंडी लोहारा, ढाँगू, ढेंकनाल, ढेबो, ढोलानाकलाँ, ढोसर, ढौर, तंवरा, तड़ोला, तरकेड़ी, तरोडारोड, तरौका, तलेगाँव ढमढेरे, तलोटी, तवड़ा, ताजनीपुर, ताल, तालबेहट, तालमेंढा, तालीकोटी, तालेड़ा, तालेड़ा-लालसोट, तितरा आशानंद, तिनसुकिया, तिरी, तिरुवण्णामलै, तिरोजपुर, तिलताली डोटी, तिलोबदार, तिवारीटोला बीरवा, तीतरड़ी, तीतरिया, तीसा, तुनि, तुसरा, तेंतरा, तेलीटोला (बांधा बाजार), तोपा कोलियरी, तोरना, तोरनी, तोला-चम्पावत, थाणें, थालनेर, थुम्मा, दतिया, दमक झापा (नेपाल), दमुहाँ, दमोह, दया छपरा, दरभंगा, दवतोरी, दसीयाँव, दहमी, दागे, दातारामगढ़, दामडी, दामनजोड़ी, दामापुर (छटन), दाहोद, दिगौड़ा, दिबियापुर, दिरखोला, दिलवाड़ी, दिल्ली, दीदारगंज, दुगाहाखुर्द, दुधरा, दुधवारा, दुधौरा, दुबवलिया, दुर्ग, दुर्गानगर बड़सेरवाँ, दुलचासर, दुलावनी, देरगाँव, देवकुली, देवकुली धाम, देवकुली (ब्रह्मपुर), देवखेड़ी, देवगढ़, देवगढ-मदारिया, देवतालाब, देवतोली (तल्ली), देवदरा, देवभोग, देवरिया, देवरीकलाँ, देवरीनाहरमऊ, देवरीबखत, देवला (माफी), देववरुणार्क, देवास, देवीपुर गम्हरिया, देवेन्द्रनगर, देहरादून, देहरी (बीना), दोरवाँ, दोहा-कटर, दौरई, दौलतगढ़, दौसा, धगोगी, धनकोंसा, धमतरी, धमौरा, धरगाँव, धरगुल्ली, धरणगाँव, धरमपुर जारंग, धरवार, धराकड़, धरौली, धलिगाँव, धामधार, धामंदा (खुजनेर), धामपुर, धार, धारखेड़ी, धावा, धावाबाद, धूरी, धोबघट (जमुई), धौलादेवी, ध्रांगध्रा, ध्रुवगढ़, नडत्तड़ी, नगर (बैकुण्ठपुर), नगरिया देवधरापुर, नगरोटा बगवाँ, नगला कुंजल, नगला मूर्ली, नगावली, नबाबगंज, नयातिलकपुर, नयानगर, नयी दिल्ली, नरला, नरवन, नरसिंहपुर, नराँव, नरायनपुर, नरियाल गाँव, नरेत, नलवाड़, नलवाड़ा, नल्लजर्ला, नवलगढ़, नवसारी, नसीराबाद, नांदिया, नाकोट, नागपुर, नागिजुली, नाचनी, नाडोली, नापासार, नारनौल, नारायणगढ़, नारेपुर (पश्चिम), नारेहड़ा, नालामुर्ली, नावडीह, नावली-वृन्दावन (देवाला), नासिक, नाहरगढ़, निंबड़ी, निंबाका गाँव, निंबाहेड़ा, निजामाबाद, निटर्रा, निवाड़ी, निवादा, निवारी, नीदर (मंडरायल), नूराबाद, नेपुरा, नेमाडियाँका खेड़ा, नेरी (रिहाड़ी), नेवरी, नेवारी (फुलवारी), नैकीना, नैनवाँ, नैल, नोधर-दिगोली, नोहर, नौगाँव (वृद्धकेदार), नौढ़िया, नौरोजाबाद, नौहाटगड़ी, न्याड़, न्यायकल, पंचकूला, पंचरूखी, पंचौरा, पंडरीरायपुर, पंढरपुर, पंत्यूड़ी, पकवलिया, पकवाइनांर, पखनपुर, पचगवाँ, पचपदरानगर, पचुआँ, पचोर, पचौरी, पटना, पटियाला, पटियाली, पट्टीततारपुर, पड़रीखुर्द, पड़रौना, पड़िहारा, पत्तेरापाली, पथरहा, परतला, परबतसर, परमानन्द गैतरा, परली वैजनाथ, परवानू, परसदा (तुरतुरिया), परसहर, परसाई पिपरिया, परसापाली, परासिया, परासी-चकलाल, पर्वती, पलवल, पलेई, पलेरा, पसपुला, पहाड़पुर, पाँच-पदरिया, पांचेत, पांडातराई, पांडुकेश्वर, पांडेडीह किसगो, पांडेय टोला, पाटन, पातल, पानसेमल, पानापूर, पानीगाँव, पायली, पालमपुर, पालवी, पावटा, पाहड़ा, पाहल, पिंडरई, पिंपरुड, पिंपलगाँव बसवंत, पिठौरा, पिपरा तहसील, पिपरा पांडे, पिपरिया गंगा, पिपला शिवनगर, पिपल्या बुजुर्ग, पिलखुवा, पिलानी, पीतमपुर, पीपरीगहरवार, पीपलपानी, पीपलरावाँ, पीपलवाड़ा, पीपल्या जोधा, पीपल्या मण्डी, पीलीभीत, पुखरायाँ, पुजारागाँव, पुणें, पुनहद, पुनहा, पुनाईचक, पुनाहना, पुनौर, पुरसंडा (अलीगंज), पुराना भोजपुर, पुराशाहगढ़, पुरुलिया, पुवायाँ, पूँछ, पूर्णियाँ, पेटरवार (मठटोला), पेटेरू, पेशोक टी०ई०, पैंची, पैगंबरपुर, पोखरभिंडा, पोखरैरा, पोटसो, पोर्टब्लेअर, पोलायकलाँ, पौना, प्रांहेड़ा, प्रीतमपुरी, फतेहपुर चौरासी, फरदफोड़, फरीदकोट, फरीदाबाद, फागा, फारबिसगंज, फार्मिंघम (यू०एस०ए०), फिरोजाबाद, फुलझर, फुलरूवा, फुलहर, फुलहर-१, फूलपुररामा, फूलबेहड़, फैजाबाद, फोर्ती (प्रेमगंज), बंका बाजार, बंधार, बंधुछपरा, बंबेली, बंसरामऊ, बक्सर, बगड़, बगरू, बगही, बगुई हाटी, बगुलिया, बचकोट पीपली, बछौर, बजरंगपुर नवागाँव, बजलपुर तेघड़ा, बजौरा, बटाला, बड़कागाँव, बड़गाँव, बड़नेर भोलजी, बड़पारी, बड़वानी, बड़सरा, बड़सू, बड़ागाँव, बड़ालू, बड़ीला, बड़ू, बडैहर (मेवा), बथुवाखास, बदनावर, बदायूँ, बदौसा, बनपुर, बनमनखी, बनवारी बसंत, बना, बनियागाँव, बनेडिया, बमनाला, बमरोली, बमोरा, बम्हौरी

(देवपुर), बयाना, बरगदहीं बसन्तनाथ, बरगवाँ, बरघाट, बरड़ा (रावजी), बरदरी, बरनमहगवाँ, बरमसिया, बरवाही, बरही, बराकर, बरारी, बरीका नगला, बरुआसागर, बरेली, बरोरी, बरोहा, बलकुवा, बगल धरैहली, बलांगीर, बलिया, बलिया-नबाबगंज, बल्लूपुर, बशारतपुर, बसंत, बसंतपुर, बसवकल्याण, बसान, बसुआड़ा, बसेड़ी, बसोल, बसोहली, बस्ती, बहरोड़, बहादुरगढ़, बहादुरपुर (जागीर), बाँकी, बाँकूडीह, बांगरोद, बांदु, बांस तालेश्वर, बाकानेर, बागपशोग, बागर, बाग्लुङ्ग, बाजार अतरिया-कुसुमी, बाड़मेर, बाढ़, बाढ़ बाजार, बाबिना, बामनिया-कलाँ, बायतु, बाराकोट-बैतड़ी, बाराबंकी, बालपुर, बालसी, बालाघाट, बालू, बालू-१, बालेश्वर, बालोतरा, बालोद, बाल्को, बासुली कटिया, बिच्छीदौना, बिछड़ौद, बिजनौर, बिड़वीगाँव, बिनका, बिबरे खुर्द, बिरगवाँ, बिरनियाँ, बिरलाग्राम, बिरलाग्राम नागदा, बिरहा, बिलटिकुरी, बिलन्दपुर (दिग्विजय टोला), बिलारीपुरा, बिलाव, बिलौंद, बिशुनपुर, बिशुनपुर समथू, बिशुनपुर बघनगरी, विशुनपुरा बाजार, बिषाड़, बिसरा, बिसाऊ, बिसून्दनी, बिहटा, बिहारसरीफ, बिहारी (टोले-शिरोमण-पट्टी), बीकानेर, बीड, बीनागंज, बीरई, बीरई-जहानाबाद, बीरपुर, बीरमपुर-सौली, बीरवाँ (बाबू टोला), बीसलपुर, बीसापुरकलाँ, बुंडाराखुर्द, बुजुर्ग खिरिया, बुधनपुरवा, बुद्धिकामना, बुरदा, बुर्जवाजी, बूँदी, बूरमाजरा, बेगूँ, बेगूसराय, बेतिया, बेनाचट्टी, बेनियाँका बास, बेनोडा (शहीद), बेरछामंडी, बेरलीकलाँ, बेरली खुर्द, बेलरगाँव, बेलसार, बेला, बेलागंज बाजार, बेलापुर, बेल्लोर, बेलौनाकलाँ, बेलौनाकलाँ (कोटिया), बैका विष्णुपुर, बैगनी, बैजनाथ, बोकारो, बोकारो स्टील सिटी, बोखड़ी (आमला), बोटाद, बोतराई, बोदवड, बोबाड़ी, बोरनार, बोरावड़, बोरीवली, बोलुँग, बौरहर, बौलाई, ब्यावर, ब्रजराजनगर, ब्रह्मपुर, ब्रह्मावली, ब्राह्मणी, भंजनगर, भंदेमऊ, भखराईन, भगवानपुर, भटकटिया (जोशी), भटली, भटवाड़ा, भट्टूकलाँ, भदवर, भद्रक, भमावद, भरथुआ, भरदा, भरपूरा, भरुच, भरेह, भर्थना, भरींटोला, भलुहा-रामनई, भवनाथपुर, भवानीपुर, भाऊगढ़, भागलपुर, भाटापारा, भादरा, भरौली खुर्द, भालूई, भिंभौरी, भिलाई, भिवंडी, भिवानी, भीखनीडीह-पांडेडीह, भीखनीडीह-पीपराडीह, भीमगढ़, भीमताल, भीलटका रोलगाँव, भीलवाड़ा, भुईली, भुवनेश्वर, भुसावर, भुसावल, भूड़को, भूल, भेड़वन, भैंसमुंडी, भैंसवाही, भैरमऊ, भैसोदा, भोगपुर, भोजपुर, भोजपुर-सुन्दरनगर, भोजवली, भोपाल, भौर, भौरा, भौली, भ्रमरपुर, मंगतोला, मंगरूलदत्त, मंगरुलनाथ, मंगलपुर (मनैतापुर), मंगलौर टाउन, मंडरी, मंडल, मंडला, मंडी, मंडोली, मंदसौर, मई, मऊ-रानीपुर, मकराना, मकरी, मकवा, मखदुमपुर, मखमेलपुर, खेमई, मखरा, मगरी, मगोर्रा, मचकना, मजलिसपुर, मजिरकांणा, मझगवाँ, मझगवाँ-रामगढ़, मझगाँव खुर्द, मझरिया, मझेरियाकलाँ, मटवारी, मटेहनी, मड़ावदा, मडोरी, मतवाना, मथुरा, मथुरापुर, मदनपुर, मदारीचक, मधासिया, मधुबन, मधुबनी, मधेपुरा, मनफरा, मनमाड, मनासा, मनिगाँव, मनिपाड़ा, मनीपाल, मनेला (तेवाड़ीखोला), मनोहरपुर, ममरेजपुर, मयसपुर (नेपाल), मरकचो, मरारीटोला (बिरसा), मरौंदा, मर्दनपुरवा, मलंगवा, मलकलीपुर डेवढ़ी, मलथौन, मलाहु, मलिनियाँदिरा, मवीकलाँ, मसवासीसेराँय, मसुरीया, मसौढ़ी महला (काश्मीरगंज), महनियावास, महमदाबाजार, महरोली, महादेव, महाभारा (नेपाल), महाराजपुर, महासमुंद, महिषी, महुआर, महुआखेड़ा, महुरा, महुवाखेरा, महू, महेशवारा, महोदा, महोबा, महोली, मांडल, मांडलगढ, मांडलटाउन, माचाडी, माचाडी चौक (सी), माछरा, माजरा, माणिकपुर, माधवनगर, माधोपुर, माधोपुर गोविंद, मानिला, मामटखेड़ा, मारकन, मालडा बुजुर्ग, मालडा बुजुर्ग (मिरजापुर), मालतीपुर, मालथौन, मालपुर, मालाड, मालेरकोटला, माल्देसिरौलीगरुड, माल्हनवाडा, मासूमपुर, महावीरनगर, माहीपुरा, मिझौना, मिठनपुरा, मिनावदा, मिराज, मिरिक (दार्जिलिंग), मिश्रपुर, मिहाना, मिहोना, मीतमन्दिर बड़ालू, मीतली, मीरजापुर, मीरापुर, मुंगेली, मुंडगोड़, मुंडा, मुंबई, मुगलसराय, मुजफ्फरपुर, मुठीपार, मुढ़ीपार, मुबारकपुर (कांटी), मुरादनगर, मुरादाबाद, मुल्लनपुर, मुवाणा-खोलीघाट, मुशेदपुर, मुश्ता, मुसाफा, मुस्तफाबाद, मूँगुस, मूंजखेड़ा, मूलाकोट, मूसलपुर, मूसापुर, मेड़तासिटी, मेदनीपुर, मेरठ, मेरठ कैंट, मेवडा, मेहकर, मेहाड़ा जाटूवास, मोगा, मोठपुर, मोडासा, मोतिहारी, मोदीनगर, मोन, मोरेड़, मोहगाँव खुर्द, मोहतरा, मोहनपुर, मोहनपुरा,

मोहभट्ठा, मोहाली, मौजपुर, मौधिया, मौलपुर, म्याऊ, यमुनानगर, यवतमाल, यादवपुर, येनखेड़ा, येवदा, रंगिया, रक्सेहा, रगजा, रगजासकती, रघुनाथपुर, रघुराजगढ़, रजडीहाँ, रजपुरा, रठेरा, रणयोधा, रतनगढ़, रतनगवाँ, रतनपुर, रतलाम, रत्ननगर टाडो (नेपाल), रधौली, रमखिरिया, रमपुरा, ररी, ररी शिकारपुरा, रसदपुरा, रहसा पूर्वी, रांगड़, राँची, राँवसर, राजगीर, राजाका सहसपुर, राजागार्डन, राजाजीका करेड़ा, राजापाखर, राजुखाड़ी, राधाऊर, रानीबाग, रामगंजमंडी, रामगढ़ जबंधे, रामगढ़ (लखोनी), रामनगर, रामपुर बखरा, रामपुर मझिला, रामपुरी, रामेश्वरकंपा, रायबरेली, रायपुर, रायपुर कल्चुरियान, रायपुरसानी (रावत), रायरंगपुर, रायसर, रायसिंहनगर, रावटी, रावतभाटा, रावलामंडी, राहजोल, रिनाक रेसी पूर्व, रीनक, रीवाँ, रुदावल, रुदौली, रुई, रुड़की, रुरवाई, रेवड़ापुर, रेवाड़ी, रेवारी, रेहटी, रैकोवा-कोलमी, रैनी, रैहन, रोड़ा, रोसावाँ, रोहतक, रौनी जाथान, लक्ष्मणपुर, लक्ष्मीपुर पोखरिया, लक्ष्मीपुरभित्ता, लक्ष्मीपुरसायत, लखनऊ, लखोरिया, लखौरा, लखौरी, लछीमा, लधौनटुकड़ा, लफदा, ललितपुर, ललितललाम-सन्हौली, लवहरफरना, लहरी-तिवारीडीह, लहेरियासराय, लाडवा, लातूर, लाबरिया, लालपुरा, लालपुरा (भीम), लालसिंग, लालसोट, लालाके-बाँसी, लावन, लासूर स्टेशन, लिधौरा (गुरसराय), लिलुआ, लीमाचौहान, लुनढूड़ा-पिठौरागढ़, लुहारी, लेवा, लोईसिंहा, लोचीनगला, लोपड़ा, लोहंडिया-बाजार, लोहा, लोहारा, लौंह, लौर, वजीरगंज, वजीरनगर, वटईकेला, वडनेर गंगाई, वडविहार, वणकरवास, वद्री, वरारी, वरुड जउलका, वरोरा, वरोरी, वलौदा, वल्लभनगर, वाडा, वाडी-नयकोटा, वानखेड, वाराणसी, वारिपदा, वास्को-डि-गामा, वाहेगाँव, विंढमगंज, विजियानगरम्, विदिशा, विनई, विभौनी, विरता, विरौंधी, विशाखापट्टनम्, विष्णुपुर, वीरबागड़ा, वेरावल, वैदहा, वैद्यनाथधाम, वैर, वैरवार, व्यासनगर (जाजपुर-रोड), शकरा, शनिचरा, शाजापुर, शामली, शाल्यो, शाहकोट, शाहगढ़, शाहजहाँपुर, शाहजहाँपुर-निनायाँ, शाहपुर-टहला, शाहपुर (पंडितटोला), शाहोपुर-बरमा, शिंदे, शिकारपुर, शिमला, शिवगंज, शिवपुरी, शिवाड़, शीतलापुरी, शीवगढ़, शुजालपुरमंडी, शेखपुरा, शेरगढ़, शेरुणा, शेषपुर (दखिना), श्योपुरकलाँ, श्रीकरणपुर, श्रीनगर, संगरिया, संग्रामपुर किला, सकरार, सठिन, सड़रा, सड़ासों, सतना, सतुआँ, सथरा, सदरपुर, सदाशिवपेठ, सनवी, सनावल, सपरून, सपलेड़, सपोटरा, सफीपुर, सबलपुर, सबलपुरखास, सबसुखपुर पठखौली, समस्तीपुर, सरखों, सरगाँव, सरथुआ, सरायपाली, सरिया, सरेंधी, सरेई चम्पुआ, सरैया गोपाल, ससौढ़, सहरी, सहार, सहारनपुर, सांगली, सांडिया, साँभरलेक, साँवड, साँवली, साँवलोदा पुरोहितान, सागर, सागरपुर, साढ़मल, सातोद-कोलवद, सादाबाद, साधपुर, साबरमती, सारंगपुर, सारसंडा, सालेवाडा, सालोन-बी, सावनेर, सासन, सासाराम, साहिबगंज, सिंगटौली, सिंगरौली, सिंगोली, सिंघाना, सिंद्री, सिकंदराबाद, सिगौली चारभुजाकी, सितारगंज, सिधौली, सिमराहीबाजार, सिमरिया, सिरपुर-कागजनगर, सिरसकन्हर, सिरहौल, सिलाटी, सिलेपुर, सिलोखर, सिवनी, सिवेरा, सिसवानाहर, सीतापुर, सीनखेडा, सीवाँ, सीसरखास, सीसवाली, सीहोर, सुंहेत, सुआतला, सुकाहर, सुगभटोली, सुगवाँ, सुगाँव, सुजानगढ़, सुजिया-मोहलिया, सुठालिया, सुतरी, सुथार-बौलिया, सुनखला, सुनाखला, सुनेत, सुमावली, सुरसुरा, सुरिहारी, सुर्री, सुरेन्द्रनगर, सुलतानपुर, सुलतानपुर पूर्व, सुसनेर, सूंखार, सूरजपुर, सूरत, सूरतगढ़, सूरी, सेंट्रल-पल्प-मिल, सेंठा, सेऊ, सेमरा, सेमराबाजार, सेमरोल, सेमलियादीरा, सेरी, सेलदा, सेवली, सैदनपुर, सैफाबाद, सोजतरोड, सोजित्रा, सोनई, सोनदत्ति, सोनवला, सोनहटी, सोनीपत, सोलसिंदा, सोहड़ी, सोहागपुर, स्वारका, हंडिया, हंसपुरा, हजारीबाग, हटनी, हड़ल, हथौड़ाखेड़ा, हनुमानगढ़-टाउन, हनुमानगढ बरेली (दिमाड़ा), हनुमानगढ़ संगम, हनूतपुरा, हब्बल, हमीरपुर, हरखपुर, हरगनपुर, हरदा, हरदी, हरदोई, हरिद्वार, हरिनगर खादीजमा, हरिपुर-डीहटोल, हरिहरपुर-वैद्यालय, हल्द्वानी, हल्दी-रामपुर, हसनबाजार, हसामपुर, हसुवा, हस्तिनापुर, हाँफा, हाँसूपुर, हाजीपुर, हाड़ेचा, हाथरस, हावड़ा, हालीशहरकोना, हिंगनघाट, हिंडौनसिटी, हिंदमोटर, हिमराजपुर, हिम्मतनगर, हिरनी, हिरनोदा, हिसार, हुमायूँपुर, हुस्सेछपरा, हूर, हेटौंडा (नेपाल), हैदरगढ़, हैदराबाद, होजाई, होल्टा, होशंगाबाद, ५६ ए०पी०ओ०, ८४ बटा० सी० पु० ब०।

# पढ़ो, समझो और करो

(१)

## पाँच लाखसे पचीसका महत्त्व अधिक

मेरे स्व० पिता ठा० करणीसिंहजी राजस्थानमें पूछे जानेवाले सरदारोंमें थे। उनका बचपन कठिनाइयोंमें बीता। परंतु उन्होंने ठिकाने (राज्य)-का काम अपने हाथमें लेते ही सब कठिनाइयोंको जीत लिया। वे कुछ ही समयमें समृद्ध जागीरदार कहलाने लगे। उन्होंने अपने जमानेमें बड़े-बड़े धार्मिक तथा सार्वजनिक सेवाके काम किये और अपने जीवनमें ज्यादा नहीं तो कम-से-कम पाँच लाख रुपये इन विविध सत्कर्मोंमें खर्च किये।

इन पाँच लाख रुपयोंके अतिरिक्त पचीस रुपये उन्होंने और खर्च किये, जिनका विशेषरूपसे मैं आज उल्लेख करना चाहता हूँ। यह उस समयका प्रसंग है, जब मैं बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करके घर आया था। तब मैं भी घरका कुछ काम देखने लगा था। दूसरे ठिकानोंकी तरह हमारे ठिकानेमें भी मुकद्दमे चला करते थे। भूराराम नामक एक व्यक्तिसे जमीन-सम्बन्धी एक मुकद्दमा चल रहा था। वह उपर्युक्त आदमीके मुकद्दमेकी पेशीका दिन था। अदालत दूर थी। गाड़ीसे जाना होता था। गाड़ी छूटनेमें केवल एक घंटेका समय शेष था। मेरे पिताजीने जब भूरारामको वहीं ग्राममें ही फिरते देखा तो उसे अपने पास बुलाकर कहा—'आज यहीं कैसे घूम रहे हो? आज तो मुकद्दमेकी पेशी है।'

उसने उत्तर दिया—'कैसे जाऊँ? वकीलको देनेके लिये पंद्रह रुपये भी नहीं हैं। पूरे ग्राममें घूम आया, कहीं भी रुपये नहीं मिले।'

यह सुनते ही मेरे पिताने मुझे पंद्रह रुपये लानेका आदेश दिया। मैं जब रुपये लेकर आया तो उन्होंने रुपये मेरे हाथसे अपने हाथमें ले लिये। यह भी एक अनोखी ही घटना थी; क्योंकि जबसे मुझे याद पड़ता है, मैंने उन्हें अपने हाथमें रुपये लेते नहीं देखा था। उन्होंने वे रुपये भूरारामको देते हुए कहा—'जा, दौड़कर गाड़ी पकड़। गाड़ी चूक जायगा तो तेरा मुकद्दमा बिगड़ जायगा।'

ऐसी ही एक दूसरी घटना है, जिसमें पिताजीने दस रुपये म्हादाराम नामके आदमीको हमारे खिलाफ मुकद्दमा लड़नेके लिये दिये थे।

एक दिन मैंने मौका पाकर पिताजीसे निवेदन किया—'ये गाँवके लोग, जिनसे अपना मुकद्दमा चलता है, अपनेसे किसी बातमें कम नहीं हैं। वे मेहनत करनेमें अपनेसे कम नहीं, पूरे ग्रामकी सहानुभूति उनके साथ है; क्योंकि वे गरीब हैं और हम धनवान् हैं। इस गरीबीके कारण न्यायालयकी सहानुभूति भी उनके साथ है। अत: इन लोगोंसे या तो मुकद्दमा लड़ना नहीं चाहिये या फिर इनकी आर्थिक सहायता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मुकद्दमा जीतनेका एक ही साधन हो सकता है कि उसे लम्बा किया जाय, जिससे इनकी अर्थव्यवस्था असंतुलित हो जाय और फलस्वरूप हम मुकद्दमा जीत जायँ। जब आप उनकी आर्थिक सहायता कर देते हैं तो वे मुकद्दमा क्यों छोड़ने लगे। इस तर्कका आपके पास कोई उत्तर हो तो मुझे समझाइये।'

इसपर उन्होंने कहा, 'मैं तेरी तरह पढ़ा हुआ तो हूँ नहीं, इससे तेरे तर्कका उत्तर मैं नहीं दे सकता। मेरी भाषा मेरी भावनाको व्यक्त करनेमें असमर्थ है। पर इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि तू गलत रास्तेपर है और मैं सहीपर। आगे चलकर तू देखेगा कि हममें कौन सही था।'

और आज मैं देख रहा हूँ कि उनकी बात कितनी सही थी। आज ग्रामका हर व्यक्ति इन पचीस रुपयोंकी गाथा गाता है। ऐसा जान पड़ता है कि इन पचीस रुपयोंके अलावा उन्होंने और कुछ खर्च किया ही नहीं; क्योंकि जिसके मुँहसे सुनो बस, इन्हीं रुपयोंकी चर्चा सुनायी देगी। पचीसका पलड़ा पाँच लाखके पलड़ेसे भी कितना भारी है!

—लक्ष्मणसिंह जागीरदार

(२)

## गरुडपुराणने सत्प्रेरणा दी

### [ पाप तथा कर्जकी गठरी साथ क्यों ले जाऊँ? ]

मेरे बाबा लाला नारायणदासजी (बझैड़ेवाले) क्षेत्रके अच्छे-बड़े जमींदारोंमें थे। पिलखुआके आस-पासके अनेक गाँवोंमें उनकी जमींदारी थी। भूमिपर काश्त करनेवाले किसानोंसे लगान या मालगुजारी मिलती थी।

यह लगभग ५० वर्ष पुरानी बात है। जमींदारीप्रथा दम तोड़ ही रही थी। पासके ग्राम सिखेड़ाका एक किसान हमारे घर आया। मैं अपने पिताजी (भक्त श्रीरामशरणदासजी)-के पास बैठा हुआ था। उसने आकर 'राम-राम' किया और पूछा—'लालाजी कहाँ हैं?'

पिताजीने बताया कि उगाहीमें किसी गाँव गये हैं, आनेवाले ही हैं। वह पासमें बैठकर प्रतीक्षा करने लगा।

एकाएक उसने अपनी धोतीकी फेंटमेंसे गंदे-से कपड़ेकी पोटली निकाली और उसे खोलकर उसमेंसे रुपयोंकी गड्डी निकाल ली। रुपयोंकी गड्डी पिताजीके पास रखकर बोला—'भगतजी! यह रकम लालाजीको देनी है। उन्होंने मुझपर अदालतमें नालिश की हुई है और मैंने वकीलके बहकावेमें आकर झूठा ही बयान दे दिया कि मैं २७० रुपये लालाजीके पुत्र भगतजीको दे गया था। मुझे कई रातसे नींद नहीं आ रही है, झूठे बयानके कारण। मैं रकम मारकर अपना परलोक नहीं बिगाड़ना चाहता।' यह कहते-कहते वह रो पड़ा।

'खचेड़ू सिंह! तुमने तो अदालतमें झूठा बयान दे दिया था, फिर यह बदलाव मनमें कैसे आया?' पिताजीने कुरेदा।

'सच बात बताऊँ आपको'—उसने कहा—'मेरे पड़ोसमें एक पण्डितजीकी मौत हो गयी। मैं उनके यहाँ गरुडपुराण सुनने गया। गरुडपुराणमें एक कथा आयी कि जो बेईमानी करता है, झूठ बोलता है, ठगी करता है, उसे परलोकमें घोर यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। कर्ज मार लेनेवालेको दूसरे जन्ममें चुकाना पड़ता है। बस, उसी रातसे मुझे नींद नहीं आ रही है। वैसे भी सत्तर वर्षका हो गया हूँ, न जाने कब भगवान्‌के यहाँसे बुलावा आ जाय। झूठ, पाप तथा कर्जका बोझ कन्धेपर क्यों ले जाऊँ?'

पिताजीने उस भोले किसानकी बातें सुनीं तो उनकी आँखें भीग आयीं उसकी निश्छलता देखकर। रुपये देकर वह चला गया—जैसे किसी बहुत बड़े भारसे मुक्त हो गया हो और दूसरे ही दिन जब पिताजीसे किसीने आकर कहा, 'खचेड़ू मर गया' तो वे रोने लगे। बोले—'बड़े कहे जानेवाले आदमी संत-महात्माओंके उपदेश सुनते हैं, धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करते हैं, परंतु उनपर अमल कोई बिरला ही करता होगा। किंतु खचेड़ू—छोटा-सा गरीब किसान, एक बार गरुडपुराणका अंश सुनते ही पाप-पुण्य, झूठ-सत्यके मर्मको गहराईसे समझ गया। वह जरूर महान् आत्मा था।'

पिताजीने चबूतरेके उस जगहकी मिट्टी उठाकर सिरसे लगा ली, जहाँ पिछले दिन खचेड़ू पैर रखे बैठा हुआ था।

—शिवकुमार गोयल

(३)

## …और ड्राइवरने गाड़ी रोक दी

घटना सन् १९५६ ई०के आसपासकी है, तब मैं कलकत्तेके एक कॉलेजमें पढ़ता था। मैंने पोलोका खेल कभी नहीं देखा था और मेरे मनमें इसे देखनेकी उत्सुकता रहती थी कि किस प्रकार घोड़ोंपर चढ़कर गेंदसे खेला जाता है। उन्हीं दिनों जयपुरके महाराजा श्रीमानसिंहजी अपनी टीमके साथ कलकत्तामें पधारे हुए थे और उस समय उनकी टीम सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। मैं अपने मित्रों श्रीभँवरलाल एवं श्रीकुन्दनलाल आदिके साथ पोलो-ग्राउण्डकी तरफ जानेके लिये बस-अड्डे पहुँचा। बसमें अंदर घुसनेकी जगह नहीं थी और पीछेकी तरफ लटकनेकी जगह भी नहीं थी। दो-चार आदमी साइडमें खिड़कियोंकी रॉडको पकड़कर लटके हुए थे। हम भी देखादेखी साइडकी खिड़कियोंके सहारे लटक गये। लटककर चलनेका जीवनमें मेरा यह पहला अनुभव था। लटकना जानता भी नहीं था। लटकनेके लिये पैर टिकानेका कोई आधार तो होना ही चाहिये। हवामें अँगुलियोंके जोरपर कितनी देर लटका जा सकता था? जिस खिड़कीसे मैं लटका था, उसमें रॉड न होकर एक पाती थी, जिसको मैं अँगुलियोंसे पकड़े हुए था। पाती चुभ रही थी, बस द्रुत गतिसे दौड़ रही थी और ऐसा लग रहा था कि अँगुलियाँ टूटनेवाली ही हैं। मेरे शरीरका संतुलन बिगड़ चुका था और रह-रहकर पैर सड़कसे टकरा रहे थे। मेरा एक साथी बार-बार पैर ऊपर करनेके लिये बोल रहा था।

मैं हताश हो चुका था। 'अब गिरा तब गिरा' की स्थिति हो गयी थी। किस क्षण हाथ छूट जायँ पता नहीं था। अब तो भगवान्‌का ही सहारा था। मैंने अपने इष्टदेवको याद किया और रक्षाकी प्रार्थना की। कुछ क्षणोंतक इष्टदेवका स्मरण करते हुए ऐसे ही लटके-लटके समय बिताया और अगले ही क्षण परम पिता परमात्माका ऐसा चमत्कार हुआ कि झटकेसे गाड़ी खड़ी हो गयी। कंडक्टरने बिना किसी कारणके गाड़ी रुकते ही ड्राइवरसे पूछा कि गाड़ी क्यों रोक दी? ड्राइवरने कहा कि जो बाहर लटक रहे हैं, उनसे टिकटके पैसे लेने हैं। उस स्थानसे पोलो-ग्राउण्ड थोड़ी ही दूर था। भगवान्‌ने मुसीबतसे पीछा छुड़ाया और हमलोग पैदल रवाना हो गये, बस भी चल पड़ी। बात आयी गयी हो गयी।

जीवनपथपर आगे बढ़ते-बढ़ते जब समझ आयी तो बात समझमें आयी कि उस सूनी जगहपर बस खड़ी क्यों हो गयी थी। एक क्षणकी देरी किये बिना बसका रुकना आज मुझे गजेन्द्रमोक्षकी याद दिलाता है। आश्चर्य तो यह भी है कि ड्राइवरको टिकटकी चिन्ता कबसे होने लगी, यह काम तो कंडक्टरका है। किंतु दयालु भगवान्‌ने ड्राइवरको गाड़ी रोकनेके लिये प्रेरित किया और हमारी जान बची। इस घटनाको समय तो बहुत हो गया है किंतु इष्टदेवका वह चमत्कार जब भी याद आता है तो उनके प्रति असीम विश्वाससे मुग्ध हो जाता हूँ। —दीपचन्द भाटी

# मनन करने योग्य

## जादूके मन्त्र

राजस्थान राज्यके जयपुर जिलेके एक राजकीय विद्यालयमें श्रीशंकरलालजी प्रधानाध्यापक होकर आये। उन्होंने वहाँके विद्यालयकी प्रगतिके लिये स्वयंको समर्पित करनेका निश्चय कर लिया था और वहाँके विद्यार्थियों तथा अन्य लोगोंमें यह प्रचारित करवा दिया कि वे एक बहुत बड़े पहुँचे हुए साधु महाराजसे जादूके ऐसे मन्त्र जान चुके हैं कि जिनके कानोंमें उन्हें फूँक देते हैं, वे लोग खूब प्रगति करके अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते हैं।

उनकी इस बातको सुनकर लोगोंमें बड़ा कौतूहल हुआ। वहाँके लोगोंने उनसे उनके जादूके मन्त्रको अपने कानोंमें डलवानेका निश्चय कर लिया। उनके इस निश्चयके बारेमें जानकर प्रधानाध्यापकजीने गुरुपूर्णिमाके दिन अपने विद्यालयमें एक विशाल समारोहका आयोजन किया और फिर उन्होंने वहाँके विद्यार्थियों और लोगोंके कानोंमें बारी-बारीसे अपना जादूका मन्त्र फूँक दिया। मन्त्र फूँकनेके बाद वे उनसे बोले—मेरा यह जादूका मन्त्र आप लोगोंपर तभी अपना प्रभाव दिखायेगा, जब विद्यार्थी दिन-रात खूब अपनी पढ़ाई-लिखाई करेंगे और यहाँके बाकी लोग परिश्रमसे अपना कृषिकार्य करेंगे। इसके साथ-साथ सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगन-जैसे नियमोंका पालन करके दीन-दु:खियोंकी सेवा भी करनी होगी।

'गुरुजी! हम सभी लोग ऐसा ही करेंगे।' वहाँके सभी विद्यार्थियों और अन्य लोगोंने उनसे सम्मिलित स्वरमें कहा। अब तो विद्यालयके सभी अध्यापक एवं अध्यापिकाओंने अपने विद्यार्थियोंको खूब परिश्रम और लगनसे पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। विद्यार्थी भी खूब परिश्रम और लगनसे अपनी पढ़ाईमें जुट गये। प्रधानाध्यापकजीने अपने विद्यालयमें खूब पेड़-पौधे लगवा दिये और उनकी देख-रेख कराने लगे। वे समय-समयपर उनमें पानी डलवाने लगे। पानीके लिये उन्होंने विद्यालयमें एक कुएँका निर्माण करवा दिया और शासकीय एवं गाँववालोंके सहयोगसे कई कमरोंका निर्माण करवा दिया।

वहाँके लोग भी दिन-रात खूब परिश्रम और लगनसे अपने कृषिकार्योंमें जुट गये थे। अब वे लोग एक-दूसरेसे प्रेमका व्यवहार करने लगे। समय-समयपर एक-दूसरेकी मदद करने लगे। सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगनके सिद्धान्तोंपर चलकर वे लोग अपना जीवन आनन्दसे व्यतीत करने लगे। उन सभीके दिन-रातके परिश्रम और लगनके परिणामस्वरूप उनके खेतोंमें खूब पैदावार हुई। कुछ वर्षोंमें उनकी तो जैसे काया ही पलट चुकी थी। विद्यार्थी भी अपनी-अपनी परीक्षाओंमें उच्च श्रेणियोंमें उत्तीर्ण होने लगे।

गरमीकी छुट्टियोंमें प्रधानाध्यापकजीने वहाँके सभी निरक्षर लोगोंको शिक्षित करनेके लिये साक्षरता-कार्यक्रम चलाया। वहाँके बड़े-बुजुर्ग लोगोंको साक्षरताका महत्त्व बताकर उन्होंने उन्हें साक्षर बना दिया। अपना जीवन सुख-शान्तिमय देखकर सभी आश्चर्यचकित थे और वे इसे जादूके मन्त्रका ही प्रभाव समझ रहे थे। उन्हें यह भी जिज्ञासा हुई कि जादूके मन्त्र कौन-से हैं। कदाचित् वे लोग भी जान जाते तो कितना अच्छा होता! तब वहाँके विद्यार्थियों और अन्य लोगोंने प्रधानाध्यापकजीसे उनके इस जादूके मन्त्रको उन्हें सिखानेका आग्रह किया, इसपर प्रधानाध्यापकजी मुसकराते हुए उनसे बोले—'सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगन—ऐसे जादूके मन्त्र हैं, जिन्हें अपनाकर प्रत्येक आदमी प्रगति करके अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकता है।'

उनकी यह बात सुनकर सभी लोग विस्मित रह गये। आज भी वहाँके सभी लोग अपना जीवन सुखपूर्वक ही व्यतीत कर रहे हैं। हमें भी सत्य, अहिंसा, दया, धर्म, परोपकार, परिश्रम और लगनके सिद्धान्तोंको अपनाकर सुखी जीवन व्यतीत करना चाहिये। ये जादूके मन्त्र नहीं तो और क्या हैं?

—ओ० पी० राजकुमार

# श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
(ना० पूर्व० ४१। ११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

**नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-**
**स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।**

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मङ्गलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पचास करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी, परंतु इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं उनके अनुसार अड़तालीस करोड़, अस्सी लाख, दस हजार मन्त्रके नाम-जप हुए हैं, जिन्हें इसी अङ्कमें प्रकाशित किया गया है। पिछले वर्ष इस नाम-जपकी संख्या लगभग उनचास करोड़, बीस लाख, नब्बे हजार थी, परंतु इस वर्ष यह संख्या कुछ कम हुई है। यद्यपि जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होनेके अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे इस वर्ष पचास करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है, यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये जिससे भगवन्नाम-

जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि०-सं० २०६०)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्‌के इस प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं—

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनाङ्क १९। ११। २००२ ई०) मंगलवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा वि०-सं० २०६० को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अङ्गुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रातःकाल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥**

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जन जपकी संख्याकी सूचना ही भेजें, जप करनेवालोंके नाम आदि नहीं। सूचना भेजनेवालोंको अपना नाम-पता स्पष्ट अक्षरोंमें अवश्य लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

**नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग, गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ ( गोरखपुर )**

प्रार्थी—

**राधेश्याम खेमका**

सम्पादक—'कल्याण'